प्रथम अध्याय

UNIVERSITY
LIBRARY
KOLHAPUR

प्रथम अध्याय

“ ‘बिस्रामपुर का संत’ उपन्यास की कथावस्तु का अनुशीलन। ”

प्रस्तावना -

आधुनिक साहित्य विधाओं में उपन्यास का सबसे अधिक और महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास का कथ्य और शिल्प युगानुरूप बदलता जा रहा है। आधुनिक युग में उपन्यासकार की दृष्टि व्यक्ति पर केंद्रित होती जा रही है। मफतलाल पटेल जी के अनुसार, “उपन्यास मानव चरित्र से व्यक्ति चरित्र की ओर कूच कर रहा है। आधुनिक परिस्थिति में यह प्रश्न भी अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होता गया है कि मानव व्यक्ति का व्यष्टि रूप में क्या महत्त्वपूर्ण स्थान होता है ? वह सामाजिक रूप में बची भी है या नहीं ? इनके उत्तर में व्यक्ति के भीतर संघर्ष के नए आयाम हमारे सामने आते है। व्यक्तित्व की, अस्तित्व की, अपनेपन की पुकार आज के उपन्यास का विषय रहा है। आधुनिक उपन्यासों में काम जीवन अथवा सैक्स को विशेष स्थान मिला है।”[1]

आज हमारे सामने एक प्रश्न यह भी है कि आधुनिक सभ्यता या जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या है ? आज की वैज्ञानिक स्पष्टता ने मानव जीवन के परंपरागत रूप को हिला दिया है। आधुनिक उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें मानव चेतना, मानव जीवन की सार्थकता अथवा नियति के विभिन्न सत्यों के ठिक चित्र प्रस्तुत किए हैं।

1.1 कथावस्तु का स्वरूप -

गद्य में रचित कथा साहित्य का महत्त्वपूर्ण रूप है उपन्यास, जो साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। किसी उपन्यास की मूल कहानी को या विभिन्न घटनाओं के घात-प्रतिघातों से मिलकर उपन्यास की जो कथा बनती है, उसे ही उपन्यास की कथावस्तु कहा जाता है। डॉ. गुलाबराय के अनुसार, “उपन्यास कार्यकारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य

कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है ।"[2] कथावस्तु की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि उपन्यास की सारी घटनाएँ शृंखलाबद्ध हो । यदि उपन्यास से एकाद घटना को भी अगर पृथक किया जाए तो मूल कथा विशृंखलित हो जाएगी । कथा का क्रम टूट जाएगा । उपन्यास पढ़ते समय पाठक को अपना या अपने आस-पास का चित्र भी अंकित करना चाहिए । कथानक वह वस्तु होती है, जिस पर उपन्यास की इमारत खड़ी होती है । उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढाँचे पर ही विकसित होता है । कथानक के बारे में डॉ. भगीरथ मिश्र का मत भी उल्लेखनीय है - "कथानक के समस्त अंगों का सुंदर संगठन घटनाओं का समुचित विन्यास उपन्यास को सुंदर बनाने के लिए आवश्यक होता है ।"[3]

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास के छ: तत्व माने है । वे है - कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, भाषाशैली और उद्देश्य, परंतु बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में ये सभी तत्व सभी उपन्यासों में उभरते ही हैं ऐसी बात नहीं । अगर मान लिया जाए कि कथावस्तु उपन्यास का प्राणतत्व है तो उसमें भी बिखराव के दर्शन हो रहे हैं ।

उपन्यास की कथावस्तु मौलिक विषय की दृष्टि से नवीनतापूर्ण, नई घटनाएँ और नई कल्पनाओं के संयोग से सुचारू ढंग से युक्त होती है । आज के उपन्यासों की कथा बिखरावपूर्ण पात्रों की भीड़ से ओत-प्रोत होती है । मुख्य कथा में अनेक गौण कथाएँ आकर प्रवाहित होती है, जिससे मुख्य कथा को खोजना काफी कठिन हो जाता है । हर पात्र अपनी-अपनी कथा को लेकर उपन्यास में अवतरित होते हैं, जिससे उपन्यास की कथावस्तु बिखरावजन्य लगती है । उपन्यासकार मुख्य कथा के साथ कौशल्यपूर्ण ढंग से उप एवं गौण

कथानकों को आबद्ध करके उपन्यास की कथावस्तु का गठन करता है । उपन्यास की घटनाएँ जीवन सत्य पर आधारित होनी चाहिए । पात्रों की हरकतें, पात्रों का बर्ताव, रहन-सहन का भी रचाव कथावस्तु परिवेशानुकूल चित्रित करना अनिवार्य होता है । उपन्यासकार इन सभी तथ्यों का भाग रखकर उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण करता है ।

समस्त उपन्यास घटनाओं से सुगठित होना अनिवार्य हैं । अनावश्यक घटनाएँ उपन्यास में नहीं आनी चाहिए । कई बार अनावश्यक घटनाएँ ही उपन्यास का विस्तार बढ़ाती हैं । साथ ही विस्तार बढ़ाकर विसंगतियों का भी निर्माण करती हैं । आज के उपन्यासों में ऐसी घटनाओं को त्याग दिया गया है ।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों की कथावस्तु में घटनाओं का बाहुल्य, प्रतिकों और मिथकों का प्रयोग और चित्रात्मकता के भी दर्शन होते हैं, जिससे उपन्यास रोचक, युगबोध, समयबोध से संपन्न होता है ।

कथावस्तु के दो प्रकार माने जाते है ।

1. **मुख्य कथा -**

उपन्यास की प्रधान या मुख्य कथा को अधिकारिक कथा कहा जाता है । उपन्यास के मुख्य पात्र को साथ लेकर चलनेवाली कथा को मुख्य कथा कहा जाता है ।

2. **प्रासंगिक कथा -**

उपन्यास के प्रमुख पात्र के सहयोग पात्रों से संबंधित कथा अथवा कथाएँ प्रासंगिक कथा के अंतर्गत आती हैं । किसी भी उपन्यास में प्रासंगिक कथा एक या एक से अधिक भी हो सकती है ।

इस तरह कथावस्तु के मुख्य कथा और प्रासंगिक कथा ऐसे दो प्रकार माने जाते हैं ।

UNIVERSITY KOLHAPUR

सन् 1960 के बाद उपन्यास शिल्प का ढाँचा परिवर्तित होता हुआ देखने को मिलता है । सन् 1975 के बाद हिंदी उपन्यास शिल्प विधा में काफी परिवर्तन लक्षित होते हैं । कुछ उपन्यासकार अपने मूल आत्मत्व की खोज में कथा, चरित्र, संवाद, परिवेश चित्रण इत्यादि परंपरागत तत्वों के प्रति आक्रमक रूप में विद्रोही होते दिखाई पड़ रहे है । उपन्यास की कथावस्तु के साथ-साथ स्वाभाविक रूप में औपन्यासिक रूप के प्रति विद्रोह अधिक मुखर हो उठा है । उपन्यास के परंपरागत शिल्प को प्रयोगशीलता ने छिन्न-भिन्न कर दिया । अनुभव के नए परिप्रेक्ष्यों एवं धरातलों ने परंपराओं के तत्वों के प्रति असंतोष व्यक्त किया और अनुभव मूल रूप को यथावत पकड़ने की महत्वाकांक्षा का साधन उपन्यास को बनाकर उसके ढाँचे को चर्मश दिया ।[4]

सन् 1960 के पहले कथावस्तु को उपन्यास में प्राणतत्व के रूप में माना जाता था, परंतु सन् 1960 के बाद कथा तत्व के प्रति अरूचि, उदासिनता, घृणा व्यक्त होने लगी है । हिंदी में प्रेमचंद उपन्यास को मानव जीवन का चरित्र समझते थे । प्रेमचंद ने उपन्यास में कथा की चौखट को उड़ा दिया और वे महान उपन्यासकार बन गए । गोदान में उन्होंने कथा का मोह नहीं रखा । गोदान की कथा होरी-धनिया आदि चरित्रों के साथ सहज अकृत्रिम रूप में प्रवाहित होती रही । तत् पश्चात सन् 1960 के बाद उपन्यास की कथा को काफी धोखा पहुँचा । साहित्य से रंजनवाद के हटने पर कथा का महत्त्व कम होने लगा । जीवन के जटिल रूप को समझने-समझाने, जीवन के संघर्ष में प्राप्त जीवन के सत्य को अभिव्यक्त करने, अपने ही जीवन अनुभव को अधिक स्पष्ट रूप में खोजने और पाने तथा जीवन विषयक चेतना को अधिक सूक्ष्म, अधिक व्यापक एवं सर्वसमावेशी बनाने का उद्देश्य जब साहित्य के सामने प्रस्तुत हुआ तब रंजनवाद के साथ कथा-तत्व भी धीरे-धीरे लुप्त होने लगा ।[5]

उपन्यास की कथावस्तु में मानसिक, बौद्धिक, अध्यात्मिक सभी पैलू समाविष्ट होने लगे । समाजवादी यथार्थ, अतियथार्थवादी, प्रकृतवाद, मनोविज्ञानवाद, अस्तित्ववाद यह समस्त जीवन-विषयक दृष्टिकोण अपनी-अपनी विशिष्ट दृष्टि से कथावस्तु के रूप में उपन्यासकार अपनी कथावस्तु में खींचने लगे । उपन्यास की कथावस्तु प्रयोगशील बनी । इसमें यथार्थ को सही दिशा दी जाने लगी । उपन्यास की कथावस्तु में यथार्थ घटनाओं का समयबोध मिलने लगा । व्यंग्यात्मकता के साथ जीवन की असलियत को प्रस्तुत किया जाने लगा । उपन्यास की कथावस्तु में यथार्थ का अनेक आयामी चित्रण करनेवाली प्रणालियों ने कथा के सौष्ठव, गठन और अनुबंधित रूपयों को तार-तार कर दिया । परिणाम स्वरूप आज उपन्यास का गंभीर अध्येता अब कथा की माँग नही करता है । स्पष्ट है कि जो रचनाएँ कथा को महत्त्व देकर रची गई है इनमें भी व्यंजित जीवन के यथार्थ पर ध्यान दिया गया है । आज कथा को परंपरागत रूप में प्रारंभ मध्य अंत के रूप में देखना असंभव हो गया है । इसका कारण यही है कि उपन्यास इन तत्वों से भी अलग बन सकता है ।

हमने इस लघु-शोध प्रबंध के लिए चुना हुआ उपन्यास सन् 1998 का होने के कारण हिंदी उपन्यासकार के अंतिम दशक की कथावस्तु की सारी प्रवृत्तियाँ इसमें नजर आती हैं । आज के उपन्यास नए-नए विषयों की तलाश करते हैं । नए विषयों को लेकर उपन्यास में बाँधकर कथावस्तु की दृष्टि से नए-नए प्रयोग करते है । हिंदी के अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने युग बदलाव, मानवी जीवन की बदलावजन्य धाराएँ आदि को उपन्यास में गठित करके कथावस्तु का ताना-बाना बुना है, जिससे उपन्यास में परंपरागत तत्त्वों के प्रति सर्वत: - असंतोष व्यक्त किया जा रहा है । 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास की कथावस्तु को इसी पृष्ठभूमि पर रखकर 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास की कथावस्तु का अनुशीलन करेंगे -

प्रस्तुत उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' विनोबा भावे के नेतृत्व में संचालित भूदान आंदोलन की विशेषताओं, कमियों और असफलताओं के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है ।

1.2 भूदान आंदोलन-पृष्ठभूमि -

प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य विनोबा भावे के चलाए गए 'भूदान आंदोलन' और 'ग्रामदान आंदोलन' का प्रसंग आया है । भूदान आंदोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक घटनाओं के साथ ही निजी जीवन का उत्थान पतन भी सिमट आया है ।

अप्रैल 1951 में हैद्राबाद जिले के शिवरामपल्ली नामक कस्बे में सर्वोदय समाज का तीसरा अधिवेशन हुआ । वहाँ तेलंगाना आंदोलन की गूँज कार्यकर्ताओं को सुनायी दी । यहीं जानकारी लेने के लिए आचार्य विनोबा भावे तेलंगाना की पदयात्रा पर निकले । वहाँ किसानों की, विशेषत: दलितों की भयानक स्थिति ने आचार्य को हिला दिया । उनके विकास के लिए सरकारी सहायता की बात उठने पर उन्होंने कहा कि अगर हम खुद ही अपनी सहायता नहीं कर सकते तो सरकारी सहायता से क्या होगा ? विनोबाजी ने इन लोगों की मदद के लिए गाँव में उपलब्ध साधनों की चर्चा की और जानना चाहा कि इन भूमिहीनों को भूस्वामी जमीन देना चाहते हैं या नहीं । बात यह हुई कि रामचंद्र रेड्डी नामक एक भूमिपति ने 100 एकड़ जमीन देने का वचन दिया । विनोबा जी को भी आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्हें यह आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी यश मिलेगा और यहीं से आचार्य विनोबा भावे दूवारा संचलित भूदान आंदोलन की शुरूआत हुई ।

विनोबाजी को यह तेलंगाना यात्रा इक्यावन दिन चली जिसमें वे करीबन 200 गाँवों में गए । तेलंगाना से परंधाम आश्रम आने पर उन्होंने भूदान-यज्ञ की क्रियानीति व्यवस्थित ढंग से निश्चित की और वे पुन: भूदान कार्य के लिए निकल पड़े । जिस तरह तेलंगाना के

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

पोचमपल्ली में भूदान की अवधारणा का उदय हुआ, वैसे ही उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले में मँगरौठ नामक गाँव में 24 मई, 1952 को ग्रामदान की कल्पना को मूर्त रूप मिला ।

भूदान आंदोलन का लक्ष्य है कि गाँव में कोई भी भूमिहीन न रहे । ग्रामदान का प्रयोजन यह है कि गाँव में कोई भी-स्वामी न रहे । वहाँ की सारी भूमि गाँव सभा की मिल्कियत में आ जाए । साथ ही भूदान-आंदोलन का उद्‌देश्य यह भी है कि जिस तरह पानी, हवा, धूप पर सबका अधिकार है उसी तरह भूमि पर भी सबका अधिकार हो । भूमि समुचित रूप से गाँव की होनी चाहिए । उस भूमि पर किसी का भी व्यक्तिगत रूप से अधिकार न हो ।

ग्रामदान के बाद गाँव में खेती के लिए कई वैकल्पिक व्यवस्थाएँ की गई । पहली यह है कि भूमिहीनों को जो भूमि दी जाएगी उस पर सहकारी फार्म बनाकर सहकारी सिद्‌धांतों से खेती की जाएगी । दूसरा विकल्प सामुहिक फार्म का है । तीसरे विकल्प के अंतर्गत प्रत्येक परिवार व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग खेती करेगा ।

विनोबा जी ने बाद में ग्रामदान के स्वरूप में भी परिवर्तन किया । विनोबा जी का यह आंदोलन इस शताब्दी के छठें और सातवें दशक में एक सशक्त आंदोलन के रूप में विकसित हुआ फिर भी भूदान-यज्ञ का सबसे महत्त्वपूर्ण चरण छठें दशक का ही है ।

इस अभूतपूर्व आंदोलन के विषय में राजनीतिशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के विचार स्वाभाविक है, एक से नहीं है । एक ओर इसे हिंसा और लोभ के ऊपर सौहार्द और सहज मानवीय उदारता की सामाजिक विषमता के निवारण का एक अमोघ अस्त्र समझा गया है । दूसरी ओर इस प्रगतिविरोधी, क्रांतिविरोधी और बड़े भूस्वामियों का पोषक मानकर इसकी उपेक्षा की गई है । जो भी हो दीर्घकालीन अनुभव से जिसे पहले भी देखा जा सकता था, यह प्रकट हो गया है कि यह आंदोलन गाँवों में एक जटिल आर्थिक और सामाजिक दुर्व्यवस्था का कोई उल्लेखनीय, व्यावहारिक और स्थायी समाधान नहीं दे पाया है । इसकी प्रमुख उपयोगिता

ग्रामीण नागरिकों में कुछ समय के लिए अपने समाज के प्रति उनके दायित्वबोध को सजग करने में रही है । ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संतुलन और विकास के लिए कृषि और भूमि सुधार के क्षेत्र में एक प्रगतिशील शासक तंत्र को सुनियोजित कदम अनिवार्यता उठाने चाहिए । उनके विकल्प के रूप में इसे नहीं देखा जा सकता । बिहार का उदाहरण इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए काफी है । आँकड़ों के अनुसार भूदान और ग्रामदान के क्षेत्र में बिहार सबसे आगे रहा है ।

1.3 'बिस्रामपुर का संत' की कथावस्तु का अनुशीलन -

प्रस्तुत उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' की कथावस्तु को ग्यारह भागों में विभाजित किया है -

प्रस्तुत उपन्यास के लेखक श्रीलाल शुक्ल हिंदी साहित्य जगत के एक सशक्त एवं लोकप्रिय उपन्यासकार हैं । सामाजिक परिस्थिति की गहरी पकड़ शुक्ल जी में है । शुक्ल जी अपनी सजग दृष्टि से परिवेश को यथार्थ के धरातल पर अंकित करने में सक्षम हैं । शुक्ल जी ने अपने उपन्यास में सामजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है । उनका 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास भूदान आंदोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित विषय और आशय दोनों दृष्टि से एकदम निराला एवं अनूठा उपन्यास है । 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में निम्नलिखित है ।

लेखक शुक्ल जी ने प्रस्तुत उपन्यास की शुरूआत बिल्कुल अलग और व्यंग्यात्मक ढंग से की है । लोगों को एकबार सत्ता की कुर्सी मिल जाए तो उनका जीवन किस तरह परिवर्तित होता है और वे कैसी आराम की जिंदगी गुजारने लगते हैं ऐसे लोगों की ऐश किस तरह होती है, इन बातों की ओर लेखक शुक्ल जी ने इशारा किया है ।

राज्य के मुख्यमंत्री राज्यपाल से मिलने के लिए आते हैं । राज्यपाल की राह देखते वे दीवानखाने में बैठे हैं, इसी वक्त राज्यपाल कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह अपनी शयनकक्षा में सपना देख रहें है, इनका यह सपना हलके बुखार में हलके नाश्ते के बाद की नींद का सपना है ।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह लगभग अस्सी साल के हैं फिर भी कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह सुंदरी का ही सपना देख रहे हैं । कुँवर साहब सपने में स्वयं को पच्चीस-छब्बीस साल पहलेवाले कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के रूप में महसूस करते हैं । कुँवर साहब जो सपना देख रहें है इस सपने के कई रूप वे पहले भी देख चुके हैं । कुँवर साहब के रंगीले सपने के दौर में टेलिफोन की घंटी बजती है और उनका सपना टूट जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कुँवर साहब के माध्यम से ऐसे लोगों की ओर इशारा किया है, जो अपने जीवन में अतृप्त होकर ही जीवन का गुजारा करते हैं । कुँवर साहब सपने में इस तरह घुलमिल गए थे कि सीधी तरह उठकर खड़े भी नहीं हो पा रहे थे । उनका धीरजसिंह वहाँ आकर सेक्रेटरी साहब के आने की खबर दे देता है । कुँवरसाहब को गुस्सा आया और उसी घुस्से में बोले इसलिए तुम टेलिफोन की घंटी बजा रहे थे ? कुँवर साहब चिल्लाकर कहने लगे, ''इस बेवकूफ को पता नहीं मुझे बुखार है''[6] कई राजनीतिक लोग ऐसे भी होते हैं कि वे स्वयं को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं । ऐसे लोग किसी की फिक्र नहीं करते । हमारी भारतीय संस्कृति ऐसी है कि द्वार पर या अपने घर आए-हुए महेमान का बड़े प्यार से स्वागत करती हैं । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कुँवर साहब के माध्यम से इस बात की ओर इशारा किया है । बाहर मुख्यमंत्री आने की खबर कुँवर साहब को दी जाती है लेकिन कुँवर साहब कुछ भी सोचते नहीं वे सचिव को डाँटते है कि आप लोगों को मेरी तबीयत का खयाल ही नहीं है । अपनी आज की इंगेजमेंट कैंसिल क्यूँ नहीं की, इस बात पर भी वे चिल्लाते हैं ।

कुँवर साहब को हलका सा बुखार था लेकिन इस बात को उन्होंने इतना बढ़ा चढ़ाकर कहा जिससे मुख्यमंत्री को भी कुँवर साहब की बीमारी का पता चला । मुख्यमंत्री ने कहा, ''बजट अधिवेशन में कुछ दिन रह गए है । संयुक्त विधान मंडल को संबोधित करते समय महामहिम को बिल्कुल स्वस्थ होना चाहिए । सड़े टमाटर और अंडें का डर नहीं है पर विपक्ष के पास कागजों का पुलिंदा भी काफी वजनी होगा । आप समझ रहे है न ?''[7] इतना कहकर कुँवर साहब से बिना मिलते ही मुख्यमंत्री सहब चले गए । मुख्यमंत्री की राज्यपाल कुंवर जयंतीप्रसाद के प्रति नाराजी के दर्शन यहाँ होते है । आमतौर पर आज-कल भी यही वातावरण दिखाई देता है कि जो राजनीतिक नेता लोग या जिसके पास सत्ता की कुर्सी होती है उन्हें जरा सी भी कोई चोट आ जाए या कुछ हल्का सा बुखार भी क्यों ना आ जाए उन्हें सुविधा से संपन्न अस्पतालों में रखा जाता है । इस बात को लेखक ने उजागर करना चाहा है । कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह का इलाज करने के लिए डॉ. साहा को बुलाया जाता है । कुँवर साहब डॉ. साहा से अच्छा व्यवहार नहीं करते । कुँवर साहब डॉ. साहा को कुछ भला-बुरा कहते हैं । डॉ. साहा को भी गुस्सा आता है और विलायत में सीखी हुई कुछ गालियाँ भी वे निकालने लगते हैं और गुस्से में वे कहते भी है, ''आपका यह महामहिम ! क्या समझता है ? कि बिना हाथ साफ किए उसे वहीं पलटकर उसके किरचुला का आपरेशन कर दूँगा ।''[8]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कुँवर साहब के माध्यम से राजनीतिक नेता लोग जातीयता के बारे में कैसे विचार रखते हैं और समाज में बर्ताव कैसा करते है इन बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है । नेता लोग ही ढिंढ़ोरा पिटाते हैं कि जातीयता यह हमारे देश के लिए कलंक है, उसे मिटाना चाहिए । जातीयता के कारण ही हमारे देश में हमेशा दंगा-फसाद होते रहते हैं और इसी कारण समाज स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है इसलिए आवश्यक है कि जातीयता नष्ट करना । यही नेता लोग हजारो लोगों के सामने इसी तरह के भाषण करके वोट

के लिए लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते है । प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे लोगों की पोल खोलने का काम लेखक ने किया है । राज्यपाल कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के बारे में एक खबर फैल जाती है कि कोई हरिजन राजभवन के सोफे पर बैठ जाए या किसी पर्दों के कपड़ें को छू ले तो राज्यपाल तुरंत ही वह कपड़े बदलवा देते हैं । इस तरह राजनीतिक नेताओं की हरिजनों के लिए जो विचारधाराएँ हैं उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास लेखक ने किया है । राजनीतिक नेताओं के जातीय भेदाभेद मिटाने के झूठा वादों पर यहाँ व्यंग्य किया गया है ।

कुँवर साहब से पहले के राज्यपाल बिल्कुल कुँवर साहब से अलग थे । वे एक गांधीवादी नेता (राज्यपाल) थे । हरिजन और पिछड़े हुए वर्गों के विकास के लिए कुछ करने की वे अधिक रूचि रखते थे । वे हमेशा अपने काम में ही व्यस्त रहते थे । अपना काम वे सर्वश्रेष्ठ मानते थे। इसी कारण यहीं राजभवन पहले एक आश्रम सा लगता था । बिल्कुल विपरित कि कुछ लोग ऐसे होते हैं कि हमेशा ऐश में रहना चाहते हैं, ठीक-ठाक रहना पसंद करते हैं वह भी स्वयं के कष्ट पर नहीं तो औरों के कष्ट पर ही ऐश करना चाहते हैं । कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह इसका अच्छा उदाहरण है ।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह बिस्तर पर लेटकर अखबार पढ़ते-पढ़ते रेडक्रॉस सोसायटी की बैठक के लिए भाषण के बारे में वरिष्ट जनसंपर्क अधिकारी से बात करते हैं । इतने में उन्हें सुंदरी की मौत का समाचार मिलता है । सुंदरी की मौत की खबर ने जयंतीप्रसाद को अपनी मौत के बारे में सोचने को बाध्य किया है । प्रस्तुत उपन्यास में अस्तित्ववादी विचारधारा के रूप में मृत्यू पर कुँवर जयंतीप्रसाद चिंतन करते हैं । इस उपन्यास के पात्र मृत्यू पर सोचने लगते है । कुँवर साहब कहते है, ''मुझे अपने से शर्मिंदा होने की जरूरत नहीं है, अगर किसी की मौत मुझे इतना विचलित नहीं करती तो शायद इसलिए कि इतनी लंबी जिंदगी बिताकर मैं उस पड़ाव पर आ गया हूँ, जहाँ घटनाएँ मुझे विचलित करने की शक्ति खो चुके हैं ।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

पर क्या सचमुच ही ऐसा है ? तब खुद अपनी मौत की कल्पना मुझे इतना विचलित क्यूँ करती है ? क्यों कि मुझे इस आंतक से छुटकारा नहीं मिल पाता ?"[9]

कुँवर साहब को देखकर पता चलता है कि मानो वे पत्थर दिल के इन्सान है । वही सुंदरी जिसे वे प्यार करते थे यहाँ तक की उसके साथ शादी भी करना चाहते थे । वही सुंदरी जिसके रंगीन सपने कुँवर साहब खो जाते थे उसी सुंदरी की मौत की वार्ता सुनकर कुँवर साहब थोड़े से भी विचलित नहीं होते । कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह का व्यवहार हमेशा अंदर एक और बाहर एक ऐसा ही लगता है । मानो खाने के दाँत एक और दिखाने के दाँत एक हैं । वे दोहरे व्यक्तित्व के लगते हैं । इसी कारण ही वे अपनी सुरक्षा व्यवस्था के साथ आश्रम नहीं जाना चाहते हैं । इस तरह कुँवर साहब दोपहर के हेलिकॉप्टर से सुंदरी के आश्रम की ओर निकलते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि लोग अपने उपयोग के लिए ही हमेशा सोचते है । यहाँ जयंतीप्रसाद की दिखावटी प्रवृत्ति पर भी लेखक ने व्यंग्य किया है ।

कुँवर जयंतीप्रसाद के बड़े भाई तअल्लुकेदार थे । वे राजनीतिक प्राणी थे और साथ ही एक सत्याग्रही भी थे । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने एक ही परिवार से उत्पन्न, एक ही माँ की कोख से उत्पन्न दो भाईयों के बीच किस तरह अलगाव होता है उस अलगाव को कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह और उनके बड़े भाई के माध्यम से स्पष्ट किया है । वैसे देखे तो कुँवर साहब के बड़े भाई सामंतवादी परंपरा में पले हैं फिर भी आसानी से साधारण लोगों में भी रह सकते हैं । इसके बिल्कुल विपरित कुँवर साहब हैं । उन्होंने विलायत जाकर बैरिस्टरी पढ़ी थी और अँग्रेजों की अनुशासन प्रियता की कथाएँ या दंत कथाएँ उनके जीवन दर्शन का मूलाधार थी । इससे स्पष्ट होता है कि कुँवर साहब आसानी से साधारण लोगों में नहीं रह सकते हैं ।

जमीनदारी टूटन के पश्चात विनोबा भावे के नेतृत्व में गाँव-गाँव भूदान की हवाफैल जाती है । जमिनी न देने पर भी जमीनें चली जाएगी इस भावना से अपनी उदारता का

प्रदर्शन करने के लिए कई जमींदार विनोबाजी को जमींने दान करने का नाटक करते हैं । इसका सबुद लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में दिया है ।

सन् 1952 में गर्मियों के दिनों में जमींदारी प्रथा समाप्त होने के कुछ महिने पहले आचार्य विनोबा भावे अपने दलबल सहित उस क्षेत्र में भूदान-यज्ञ का मंत्र फूँकने आए । उसी समय एक समाजवादी आंदोलन में कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के बड़े भाई-राजा साहब जेल चले गए थे । आ. विनोबा भावे ही इस भूदान-आंदोलन के पहले अधिष्ठाता थे । भूदान यज्ञ के बारे में उनका सार्वजनिक संदेश बड़ा सीधा था। उनका कहना था कि जिस तरह हवा और धूप किसी एक की नहीं है सबकी है, वैसे ही जमीन भी सबकी है । अत: विनोबाजी के कहने का स्पष्ट अर्थ यहीं होता कि भूमि सबकी माँ है । फिर कुछ बच्चों का उस पर अधिकार है और कुछ बच्चों को उसके पास जाना भी मना है ? ये ठीक नहीं है । इसलिए जमीन का बँटवारा समान होना अनिवार्य है । जमीन ही सबका आधार है और वही आधार सबको मिलना चाहिए । हर एक को जमीन मिलनी चाहिए । लेकिन सिर्फ उसी से कोई जैसे हर एक को हवा और पानी की आवश्यकता है वैसे ही जमीन की भी आवश्यकता है । जीवित रहने के लिए भूमि का आधार आवश्यक होता है । विनोबा जी कहते है, ''गाँवों की उन्नति के लिए उद्योग का होना आवश्यक है । लोगों को लगता है कि हमें भूमि मिल गई अब सारी कठिनाईयाँ दूर हो गई लेकिन यह कल्पना बिल्कुल गलत है । भूमि का सही बँटवारा हो यह जरूरी है लेकिन सिर्फ उसीसे देश की उन्नति नहीं होगी । जिस देश में उद्योग नहीं होंगे वहाँ लक्ष्मी का भी निवास नहीं होता ।''[10] इस तरह के विचारों को लेकर विनोबा जी गाँव-गाँव घूम रहे थे । उनके साथ कार्यकर्ताओं का भारी जमाव था । उनके विचारों से काफी लोग प्रभावित हो चुके थे । कुछ ही दिन पहले तेलंगाना के छोटे खेतिहरों और खेत मजदूरों ने ऐलान किया था कि अब सिर्फ मजदूर ही नहीं तो वहाँ के खेत भी जाग गए हैं । उस आंदोलन में उन्होंने बड़े-बड़े भूमिपतियों को उसी

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY

भूमि में दफन किया था । विनोबा जी कहते है, उस संघर्ष के खूँख्वार धुएँ में वहाँ की हवा अभी तक दमघौटू बनी हुई थी । इधर उत्तर भारत में आचार्य शिशुओं की-सी निश्छलता के साथ, शिशुओं के ही भरोसे से कह रहे थे कि ''भूमिपतियों का हृदय बदलेगा, वे अपनी जमीन भूमिहीनों में बाँटेंगे जैसे अंतरिक्ष हवा को, सूरज, धूप को बाँटता है ।''[11] आ. विनोबा भावे लोगों के कल्याण के लिए, भूमिहीनों को भूमि दिलवाने के लिए गाँव-गाँव घूम रहे थे । धूप-सर्दी की उन्होंने कोई परवा नहीं की । उनका केवल एक मात्र उद्‌देश्य था कि कोई भमिहीन न रहे । विनोबा जी लोगों के लिए इतने कठिन काम कर रहे थे और दूसरी ओर कुँवर साहब जैसे स्वार्थी लोग समाज को दिखाने के लिए स्वयं 'मामूली आदमी' बनने का नाटक कर रहे थे । इसका चित्रण लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है । आचार्य विनोबा भावे अपने कार्यकर्ताओं के साथ कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के गाँव की ओर चलने लगे । कुँवर साहब के माध्यम से लेखक ने ढोंगी नेताओं की पोल बिल्कुल सूक्ष्मता से खोली है । ''झीने खद्‌दर की बेशकीमती धोती और कुर्ते में, सफेद खादी सिल्क की सदरी और कलफदार गाँधी टोपी के साथ उन्होंने अपने को 'मामुली आदमी' बनाने की कोशिश की थी ।''[12] कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह की ओर किसी का ध्यान नहीं था । कुँवर साहब का प्रशस्त महल सामने ही था लेकिन कार्यकर्ताओं का जत्था इस ओर न मुड़कर उसी के समानांतर एक धूल भरे गलियारे पर उतर आया । कुँवर साहब ने इस कार्यकर्ताओं को इशारा किया लेकिन कुछ उपयोग नहीं हुआ । आचार्य और उनके कार्यकर्ताओं का जमाव आगे ही चलने लगा । जिस रास्ते पर से आचार्य और उनके कार्यकर्ताओं का जत्था जा रहा था वह रास्ता अच्छा नहीं था । चलते समय आचार्य जी ने कुँवर-साहब को देखकर भी अनदेखा कर दिया और उसी रस्ते से वे आगे चलने लगे । कुँवर साहब ने आचार्य जी से कहा, ''आगे एक नाला पड़नेवाला है । अब आप कृपया उधर के रास्ते पर पदार्पण करें । वह सड़क हमारे परिवार की निजी संपत्ति रही है । उसे यहाँ के भूदान यज्ञ में पहली आहुति के रूप में

आपको समर्पित कर रहा हूँ । इसे अस्वीकार न करें ।"[13] अभी तक आचार्य जी ने कुँवर साहब के साथ बात नहीं की थी । कुँवर साहब स्वयं आचार्य जी के पास जाकर खड़े हो गए और आचार्य जी को प्रणाम करके बोले, "अशिष्टता तो हैं पर आपके पहले दो शब्द बोलकर कुछ निवेदन करना चाहता हूँ ।"[14] आचार्य जी ने भी उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया । मानो आचार्य जी ने कुँवर साहब को बोलने की अनुमति ही दे दी । कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह बोले, "हवा और धूप की तरह धरती माँ भी हम सबकी है । आज इस क्षेत्र में आचार्य जी के पदार्पण के अवसर पर हम इसे प्रमाणित भी करना चाहते थे । पर आप जानते ही हैं, इस सारी भूमि के कानूनी मालिक बड़े हैं । वे इस समय जेल में हैं ।"[15]

उपर्युक्त बातों से बिल्कुल स्पष्ट होता है कि कुँवर साहब कितने ढोंगी और साथ ही चालाक भी हैं । हवा और धूप की तरह धरती माँ भी सबकी है । इतनी बड़ी बात कहकर लोगों का ध्यान अपनी ओर बिल्कुल आसानी से आकर्षित कर लेते हैं लेकिन दूसरे ही क्षण वे कितने असमर्थ लगते है । लोगों की चालाकी प्रवृत्ति किस तरह की होती है इस पर लेखक ने व्यंग्य किया है ।

कुछ किसान और कुँवर साहब ने मिलकर कुछ जमीन दान के रूप में दे दी । इसी अवसर पर एक खेतिहर ने कहा, "इन गाँवों में धरा क्या है ? आधे से ऊपर तो ऊसर-बंजर बीहड़ है ।"[16]

कुछ विधान से स्पष्ट होता है कि लोग अपना नाम अमर रखने के लिए किस तरह चालाकी से चाल चलते हैं । समाज में अपना नाम कमाना चाहते हैं ।

कुँवर साहब वापस आकर अपनी जगह खड़े हो गए । इस दरम्यान एक नवयुवक ने उनके पास आकर कहा मैं निर्मल भाई हूँ । कुँवर साहब को निर्मल भाई और सुंदरी की पहचान हो गई । जब से कुँवर साहब ने सुंदरी को देखा तब से वे बेचैन हो गए । सुंदरी को

देखते ही एकदम कुँवर साहब को जयश्री की याद आई । कुँवर साहब मानो सुंदरी में ही जयश्री को खोजने लगे । कुँवर साहब सुंदरी को मिलने की कोशिश करने लगे । शत का सन्नाटा छाया हुआ था । इस दरम्यान कुँवर साहब मात्र सुंदरी को मिलने के लिए जाने की सोच रहे है । कुँवर साहब इतने चालाक है कि सब लोगों की व्यवस्था हुई है या नहीं यह देखने के बहाने, सुंदरी को देखने आते हैं । कुँवर साहब रात के सन्नाटे का आधार लेकर सुंदरी को देखने आते हैं लेकिन शर्मिंदा होकर उन्हें वापस चलना पड़ता है ।

जहाँ सुंदरी रहती थी या जहाँ सुंदरी का आश्रम या उसी गाँव का नाम ही 'बिस्रामपुर' है । यहाँ सुंदरी ने स्थापित किया हुआ बाल विहार था । उससे जुड़ी हुई अन्य संस्थाएँ भी थी । कभी यह गाँव भी आचार्य विनोबा भावे के भूदान-यज्ञ में ग्रामदान के रूप में अर्पित हुआ था । इसी गाँव में किसानों को एकजूट करके खेती की एक परियोजना बनाई थी । इस आश्रम में और भी अनेक योजनाएँ थी । जैसे ग्रामोद्योग, माध्यमिक विद्यालय, नारी कल्याण का शिल्प प्रशिक्षण केंद्र, एक बाल-विहार जहाँ गरीब और निराश्रित बच्चों के रहने और पढ़ने का प्रबंध है । वहाँ कुँवर साहब को आश्रम और संस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है ।

समाज में स्थित अनेक संस्थाएँ वगैरा होती है और उसी संस्थाओं के विकास के लिए सरकार से अनुदान भी मिलता है । यह मिला हुआ अनुदान बीच में ही नेता लोग किस तरह हड़प लेते है इसका चित्रण लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है । ऐसे लोग पहले अपने स्वार्थ की सोचते हैं और बाद में संस्थाओं के कल्याण की बात सोचते है । आझादी के बाद विकास के नाम पर सरकार द्वारा अधिकाधिक पैसा लूटकर गाँव के जमींदार, नेता सरकारी अनुदान का उपयोग अपनी ही जेबे भरने के लिए करते हैं । इसका सबूद प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है । ''पिछले बीस सालों में हर एक मुख्यमंत्री इस मुर्दा घोड़े पर सरकारी अनुदान के कोड़े

बरसाता रहा है । एक आता है और कुटीर उद्योग के नाम पर पाँच लाख का अनुदान घोषित कर जाता है । दूसरा दस्तकार प्रशिक्षण के नाम पर दस लाख, तीसरा सामाजिक वानिकी के नाम पर बीस लाख । इन लाखों का क्या हो रहा है ? कोई नहीं जानता ।''[17] इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो अनुदान सरकार से मिलता है वह पूरी तरह संस्था के उपयोग में आता ही नहीं और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसका प्रत्युत्तर करने की हिम्मत किसी के पास होती भी नहीं ।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह बैठकर सुंदरी के बारे में सोच रहे है । कुछ देर उनका ध्यान सुंदरी पर केंद्रित होता है और उसके बहाने जीवन और मृत्यु के बारे में सोचने लगते हैं । जीवन की सार्थकता और निरर्थकता के बारे में भी सोचने लगते है । कुँवर साहब काफी देर इन विचारों में खो जाते हैं लेकिन उन्हें ही लगता है कि मैं कुछ भी नहीं सोच रहा हूँ । उन्हें लगता है कि मैं सिर्फ सामने की फुलों और तितलियों को ही देख रहा हूँ । इस दरम्यान उनका बेटा विवेक उन्हें मिलने आता है । विवेक दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र की एम. ए. की उपाधि प्राप्त करके अपने गाँव लौट आया है ।

कुँवर साहब के बड़े भाई जो समाजवादी आंदोलन में जेल यात्रा करके वापस आए हैं उनमें और विवेक में भूदान आंदोलन के विषय पर खुलकर बातें होती है । कुँवर साहब के बड़े भाई रियासत भूदान यज्ञ के नज्जारों को दिलचस्पी से देख रहे थे । उनके सम्मानित नेता जयप्रकाश नारायण की इस आंदोलन के प्रति सदभावना के बावजूद वे खुद इसके बारे में काफी संदेहशील थे । विवेक को उनके संशयों का पता या और इस विषय पर वे दोनों अक्सर बात भी करते थे । दोनों में हमेशा खुलकर बातें होती थी । विवेक मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित हैं । विवेक और कुँवर साहब के बड़े भाई भूदान आंदोलन के अल्पकालीन और दीर्घकालीन परिणामों के बारे में सोचते हैं । कुँवर साहब के बड़े भाई को यह आंदोलन एक अनोखा आंदोलन लगता है और वे विवेक से कहते है, ''दुनिया में यह अपने ढंग का अनोखा आंदोलन है । तुमको

इसका बहुत नजदीक से अध्ययन करना चाहिए । देखना होगा कि इसके अल्पकालीन और दीर्घकालीन परिणाम क्या हैं, या क्या होंगे ।"[18] विवेक अपने ताऊ से इजाजत लेकर कहता है कि मैं इन परिणामों की घोषणा पहले ही कर सकता हूँ । विवेक यह भी कहता है कि इस पर ज्यादा दिमाग खर्च करने की भी कोई जरूरत नहीं है । विवेक अपने देशवासियों के स्वभाव पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कहता है - आदर्श को पुरानी गाथाएँ मानकर सनुते, सुनाते चलना और प्रतीक को ही तथ्य मानना यह हमारे देशवासियों काा स्वभाव है । विवेक अपने ताऊ से कहता है कि,"आदर्श की पुरानी गाथाएँ सुनते-सुनते वे प्रतीक को तथ्य मानने लगते हैं और आदर्श आचरण के प्रतिकात्मक कर्मकांड से वास्तविक ऐतिहासिक परिणामों की उम्मीद करने लगते हैं ।"[19] इस दरम्यान सुंदरी के बारे में भी चर्चा होने लगी । जब कुँवर साहब को पता चला कि विवेक और सुंदरी की अच्छी जान-पहचान थी और सुंदरी ने जो शोध कार्य किया है वह विवेक के विचारों से; तो उन्हें कुछ अनचाहा सा ही लगने लगा । कुछ देर कुँवर साहब फिर जयश्री को सुंदरी में खोजने का प्रयास करने लगे और जयश्री के साथ जो प्रेमसंबंध थे वह उनके आँखों के सामने लहराने लगे ।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह महत्त्वकांक्षी रहे हैं । भूदान यज्ञ में उन्होंने जो थोडीशी जमीन दान की थी उसका अनुकूल फल उन्हें प्राप्त हुआ । उन्हें संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान मिला । कुँवर साहब हमेशा अपने जीवन में महत्त्वाकांक्षी रहे हैं । समाज में बहुत से लाग ऐसे होते है कि उनके पास जो कुछ होता है उसी पर वे संतुष्ट नहीं होते हैं । उन्हें हमेशा 'और चाहिए' यह बात सताती रहती है । जो है उसमें खुश रहना उन्हें अच्छा लगता शायद इसलिए ही ऐसे लोग एक-के बाद एक महत्त्वाकांक्षा की इच्छा रखते हैं । जैसे कुँवर साहब वकिल है लेकिन उसी पद पर वे संतुष्ट नहीं हैं, उससे भी आगे वे जाना चाहते हैं ।

SHIVAJI ... KOLHAPUR

कई दिनों के बाद कुँवर साहब दिल्ली आते हैं । गव्हर्नर पद छोड़कर वे अब अपने बेटे विवेक के साथ रूके थे । एक दिन नाश्ते के बाद विवेक ने बताया कि बाबूजी, रेड्डी साहब आपसे मिलने आनेवाले हैं । रेड्डी से मिलने की कुँवर साहब की इच्छा नहीं थी । कुँवर साहब हमेशा ऐसे रहे हैं कि स्वयं के सिवा वे दूसरे किसी को ज्यादा महत्त्व नहीं देते थे । रेड्डी से उनकी जो जलन है या उनसे बात करने की इच्छा न होना यह इससे स्पष्ट होता है । स्वयं को ही वे हमेशा तिष्ठ मानते हैं । कुँवर साहब विवेक से कहते हैं कि, "आने दो, पर उसकी गपबाजी से मैं उब गया हूँ । दिखता यही है कि पी.एम. क ओर से सारे फैसले वही ले रहा है, पर उसकी है कुत्ते से भी गई-बीती है ।"[20] समाज में लोगों की एक दूसरे के प्रति किस तरह की अवधारणाएँ होती हैं इन बातों को लेखक ने स्पष्ट किया है । लेखक का इशारा इस बात की ओर है कि समाज छोटे से छोटा आदमी भी कब अपने लिए उपयोगी आएगा ये हम बता नहीं सकते । इसलिए जरूरी है कि एक दूसरे को कम न समझे तो ही अच्छा है । अपने पिताजी को विवेक अच्छी तरह से जानता है इसलिए ही वह हँसकर बात टाल देता है । विवेक अपने पिताजी से कहता है कि, "बाबूजी, इन राजनीतिक जंतुओं में सचमुच ही अगर कोई ऐसा दिखे - जिसकी हैसियत कुत्ते से बेहतर हो तो मुझे बताइगा । देखना चाहूँगा कि वह कैसा दिखता है ।"[21] उपर्युक्त बातों से लेखक यही स्पष्ट करना चाहते है कि पुरानी और नयी पीढ़ी में सोचने का ढंग किस तरह का है ।

रेड्डी आने के बाद कुछ देर कुँवर साहब से बातें करते बैठते हैं और चले जाते हैं । आज-कल एकाद नेता को हल्का सा बुखार आने के बाद या तबीयत खराब होने के कारण उन्हें जब अस्पताल में भरती किया जाता है तभी तो उन्हें और भी ज्यादा महत्त्व प्राप्त होता है । रोज उनके बारे नें अखबार कुछ ना कुछ नया छापकर आता है । इस बात पर लेखक ने रेड्डी साहब के द्वारा अच्छा व्यंग्य किया है । कुँवर साहब अस्पताल में है और वे प्रेस के लिए

बिल्कुल एक खबर से बन गए है । रेड्डी कहते है, "राष्ट्रीय अखबारों ने बताया है कि आपको पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी गई है । अब, बिना कुछ किये हुए ही आप जो कर रहे हैं, वह यही है - पूर्ण विश्राम । हा ! हा ! हा ! हा !"[22] साधारण आदमी भी अस्पताल में होते है और कुँवर साहब जैसे लोग भी अस्पताल में होते है लेकिन दोनों के जीवन में अंतर कितना है ? यह स्पष्ट करना ही लेखक का दृष्टिकोन रहा है ।

इस दरम्यान एक महिना डॉक्टर के साथ अपने बेटे विवेक की शादी करने की बात कुँवर साहब सोचते है । उसे मैं अपनी बहू बनाना चाहता हूँ, यह बात कुँवर साहब रेड्डी को बताते है । विवेक मात्र शादी के लिए राजी नहीं होता और वह बात टाल देता है । इस बात के दौरान ही कुँवर साहब सुंदरी के कागजातों के बारे में पूछते है । विवेक वह कागजात अभी देने के लिए इन्कार करता है । इस पर वह कागजात बिस्रामपुर भेजने की सलाह कुँवर साहब विवेक को देते है । थोडी देर बाद कुँवर साहब विवेक से कहते है कि मैं एक सप्ताह बाद बिस्रामपुर जाऊँगा । विवेक को यह बात सुनकर कुछ धक्का सा लगा और कुछ अटककर ही उसने पूछा, "आपने अचानक यह फैसला कैसे कर जला ?"[23] इस पर कुँवर साहब कहते है कि मेरा यह फैसला अचानक नहीं है । पैसे तो मैं वानप्रस्थ जाना चाहता हूँ जहाँ मुझे बहुत पहले जाना चाहिए था और ये रेड्डी जैसे लोग हैं वे इस भ्रम हमें है कि वे देश-सेवा कर रहे हैं । मैं उन्हीं जैसा बेवकूफ नहीं हूँ । आज कल ऐसे लोगों के भुलावे से मैं दूर आ गया हूँ । सत्ता को तजुर्बा हासिल कर चुकने पर मैं पहली बार आजादी का अनुभव कर रहा हूँ । मेरे जिंदगी के जो बाकी दिन बचे है वह मैं किसी अच्छे काम में लगाना चाहता हूँ । कोई अच्छे, सार्थक काम में लगाना चाहता हूँ मैंने तय किया और इसके सिवाय मेरे लिए कोई दूसरा रास्ता भी नहीं है ।

कुँवर साहब का उपर्युक्त बातों से ढोंगीपन बिल्कुल स्पष्ट होता है । ऐसे लोगों के लिए यही कहना ठीक लगता है कि, 'सौ चूहे खाके बिल्ली चली हाज को ।' कुँवर साहब

की माध्यम से लेखक यही तथ्य को स्पष्ट करना चाहते है कि जब समाज में ढोंगी वृत्ति के लोग कैसे होते हैं । उनके हाथ में जब सत्ता होती है तब वे लोगों के लिए कुछ नहीं कर पाते । हमेशा वे लोग अपने ही स्वार्थ की सोचते है । जब हाथ में सत्ता होती है, कुछ करने की ताकद होती है तब वे कुछ नहीं कर पाते । सवाल यह खड़ा होता है कि बुढापे की ओर चलने वाले लोग ही वैसे वानप्रस्थ का रास्ता चुन लेते हैं और भला ये लोग और लोगों की क्या मदद करेंगे ? यही बात या तथ्य को लेखक ने कुँवर साहब जैसे पात्र के द्वारा स्पष्ट किया है । विवेक स्वयं को सँभालकर कहता है, ''ये महापुरुष अब सत्ता से वंचित होकर नाटकीयता में जीना चाहते है !''[24] विवेक अपने बाबूजी के लिए अपने पास ही रहने के लिए कहते है लेकिन साहब नहीं मानते । इस दरम्यान दोनों बाप बेटे में कुछ संघर्ष की बातें भी होती है । कुँवर साहब तीखेपन से कहते है, ''वहाँ रहकर अगर मैं उस काम को आगे बढ़ाऊँ जिसे सुंदरी ने अपने त्याग और तपस्या से सींचा तो . . . तो वह भी तुम्हारी नजर में मेरी सनक भर है ?''[25] विवेक अपने पिता को समझता है कि जो काम आप वहाँ जाकर करना चाहते हो वह काम आप यहाँ रहकर भी कर सकते है । कुँवर साहब मात्र वहाँ जाना ही जरूरी मानते है । बिस्रामपुर जाना निश्चित करते हैं और आश्रम में मंत्री जी को अपने आने की खबर दे देते हैं । वहाँ जाने से पहले ही वहाँ स्वयं को हर सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए इसका बंदोबस्त करते हैं । यहाँ तक की कमोड़ भी उन्हें पश्चिमी ढ़ंग का ही चाहिए । यह बातें फिलहाल विवेक को पसंद नहीं है फिर भी वह कुछ नहीं बोल सका ।

उपर्युक्त विवेचन से कुँवर साहब की नाटकीय वृत्ति साफ नजर आती है । पहले-पहल कुँवर साहब विवेक से कहते है कि मैं मेरे जीवन के बचे हुए दिन अच्छे काम में लगाना चाहता हूँ । लोगों के लिए कुछ अच्छा काम करना चाहते थे । कुँवर साहब रहने के लिए बिस्रामपुर के आश्रम जा रहे हैं । आश्रम में वैसे देखे तो आवश्यकता से ज्यादा चीजों का

इंतजाम नहीं होता । रोटी, कपड़ा और मकान इनके सिवा जीने के लिए और चाहिए भी क्या ? कुँवर साहब मात्र ऐसे आश्रम रहकर लोगों के लिए कुछ करना तो चाहते है लेकिन स्वयं को पहले पाश्चात्य सुविधाओं की व्यवस्था का बंदोबस्त करके ही । सोचने की बात यह है कि भारतीय संस्कृति के जैसा आश्रम और उसी आश्रम में पाश्चात्य संस्कृति का कमोड़ ? कितना विरोधाभास लगता है । इससे तो ज्यादा विचारणीय बात यह है कि ऐसे सुविधाओं में पलनेवाले या रहनेवाले लोग साधारण लोगों की सेवा क्या करेंगे ? उनके लिए ये लोग क्या करेंगे ? सच तो यह है कि जो लोग जनता के लिए कुछ करना चाहते है, स्वयं को नेता कहलवाते हैं उन्हीं लोगों की सेवा के लिए ही लोगों की काफी जरूरत होती है । सुबह से लेकर रात तक उन्हीं की सेवा करनी पड़ती है । जैसे कुँवर साहब उठकर स्वयं पानी लेकर पी भी नहीं सकते । उनके हाथ में पानी का गिलास वह भी ट्रे में सजाकर देना होता है तभी यह महाशय पानी पिते है । क्या, हम ऐसे लोगों से आशा करेंगे कि ये लोग पीड़ित, दलित लोगों की सेवा करेंगे ? अगर हम कुँवर साहब, जो जीवन के बचे हुए दिन सार्थक काम कें लगाना चाहते हैं उन्हें देखे तो ऐसे लोगों से कुछ आशा नहीं रखेंगे । आज-कल समाज के अनेक नेता लोग कहते हैं कि हम लोगों के लिए ये करेंगे, ओ करेंगे, हम आपकी सेवा के लिए ही है । आपकी, जनता की सेवा करना यही हमारा धर्म है । अत: प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने नाटकीय वृत्ति के लोग किस तरह के होते हैं यह कुँवर साहब जैसे पात्र के जरिए स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

कुँवर साहब बिस्रामपुर जाने से पहले ही उनकी सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है । बिस्रामपुर के आश्रम में हर सुबह प्रार्थना होती है । प्रार्थना को हाजिर रहना यह आश्रम का अनुशासन है । प्रार्थना के लिए हाजिर रहना यह तो नियम है लेकिन कुँवर साहब जैसे लोग अगर हाजिर न रहे तो उन्हें शिक्षा कौन करेगा ? कोई नहीं । इस बात को कुँवर साहब भी अच्छी तरह से जानते हैं और प्रार्थना सभा में कल से आऊँगा कहकर वहाँ जाना ही टाल देते है ।

प्रस्तुत विवरण से लेखक का यही स्पष्ट करने का दृष्टिकोन है कि जिन लोगों के हाथ में सत्ता है उनके लिए कोई नियम महत्त्वपूर्ण नहीं होता । महत्त्वपूर्ण होते हैं तो वही लोग जिनके हाथ में सत्ता हैं । धीरे-धीरे कुँवर साहब आश्रम के माहौल से परिचित होने लगे ।

जिन लोगों को कष्ट क्या है ? मेहनता क्या होती है ? यही मालूम नहीं वे लोग दूसरों को महनत पर भाषण देते हैं । अत: जो लोग जिंदगी जिते हैं, सुविधाओं से संपन्न परिवार में रहते हैं ऐसे लोग केवल प्रस्तुत उपन्यास में दिया है । एक बार कुँवर साहब बिस्तर पर लेटकर पत्रिका पढ़ रहे थे और उन्हें प्यास लगती है । धीरजसिंह शायद कहीं बाहर गया था । कुँवर साहब की आवाज सुनकर बाहर बैठा हुआ आदमी अंदर जाकर कुँवर साहब को पानी दे देता है । कुँवर साहब वह पानी नहीं पिते । आखिर धीरज सिंह आकर ही उन्हें पानी दे देता है तब जाकर कुँवर साहब वह पानी पिते हैं । पानी पिकर कुँवर साहब एक गहरी साँस लेते है । इस साँस का अर्थ था - आश्रम सेवा का पाखंड वे ज्यादा दिन नहीं सह पायेंगे । उन्हें मालूम था, तभी तो वे धीरजसिंह को साथ लेकर आए थे ।

उपर्युक्त बातों से यह प्रश्न निर्माण होता है कि कुँवर साहब को एक साधारण आदमी के हाथ पानी तक नहीं चल सकता फिर वे साधारण लोगों में कैसे रह पायेंगे ? कुछ ही दिनों में वे त्रस्त हो गए । अत: लोगों की ढोंगी वृत्ति, नाटकीय तथा स्वार्थी प्रवृत्ति की ओर लेखक ने इशारा किया है । खुद की मदद जो खुद नहीं सकते वे दूसरों की मदद क्या करेंगे ? लेखक ने इस बात को उजागर किया है कि आदमी को चाहिए की कम-से-कम अपनी मदद तो आप ही करना चाहिए । औरों पर निर्भर रहना अच्छी बात नहीं है । बरसों पहले, जब उनके रियासती ग्रामदान के बाद भूमि-व्यवस्था देखने के लिए सुंदरी, सुशिला बेन और निर्मल भाई उनकी कोठी में कार्यालय खोलकर रूक गए थे । एक सुबह कुँवर साहब, सुंदरी सुशीला और निर्मल भाई को साथ लेकर राव साहब से मिलने निकलते हैं । जाते वक्त कुँवर साहब हमेशा

की तरह ड्राइव्हर को साथ नहीं लेते । सुशीला और सुंदरी को वे अगली सीट पर बैठने का इशारा करते हैं । सुशीला कहती है कि ड्राइव्हर को साथ क्यूँ नहीं लिया तो कुँवर साहब कहते है कि हम किसी दूसरे आदमी को नहीं लेना चाहते । सुशीला कहती है कि, क्या हम आदमी नहीं है ? कुँवर साहब काफी चालाक आदमी हैं, कह देते है, "तुम औरत नहीं हो, लड़की भी नहीं हो, लकड़ी हो । भूदान यज्ञ की लकड़ी । क्या कहते हैं उसे, समीधा ।"[26] बिल्कुल चालाकी से यह बात कहते हैं और बाद में सहजता से समझाने लगते है । जाते समय कुछ बातें होने लगी । इन बातों के दौरान कुँवर साहब की खिल्ली उड़ाने हेतु सुशीला कुँवर साहब से कहती है, "आज आप विवेक के बड़े भाई जैसे दीख रहे हैं ।"[27]

कुँवर साहब सुशीला और सुंदरी का राव साहब से परिचय करवाते है । रावसाहब कम पढ़े-लिखे आदमी हैं लेकिन सबसे होशियार, जबरदस्त सूझ-बुझ, खुला व्यवहार, प्रखर व्यवहार बुद्धिवाले आदमी है । रावसाहब के टी चेला कुँवर साहब के बड़े भाई थे । बहुत देर तक चर्चा रही । कुँवर साहब के बड़े भाई राजा साहब-समाजवादी पार्टी की ओर से चलनेवाले एक मौसमी आंदोलन में दूबारा जेल गए थे । उनकी बात के लिए ही कुँवर साहब रावसाहब के यहाँ आए थे और यहीं बात गोपनीय थी । रावसाहब मात्र इतने होशियार थे कि कुँवर साहब को देखते ही इस गोपनियता को तोड दिया । दोनों में काफी चर्चा हुई । रावसाहब की बातों से कुँवर साहब को हैरत सी हुई पर उन्होंने उसे प्रकट होने नहीं दिया। उनकी बात का खंडन भी नहीं किया और न ही उन्हें धक्का लगे या उनके प्रतिकूल ऐसी बात उन्होंने कही । कुँवर साहब ने कहा, "यह सही है कि मैं अब भी आपकी पुरानी पार्टी में हूँ पर आप खुद जानते हैं कि मैं ऐसा कुछ भी करने की नहीं सोच सकता जो आपकी गरिमा के अनुकूल न हो ।"[28] प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है कि अपनी बात या स्वार्थी वृत्ति के लिए दूसरों के सामने बिल्कुल नरम आवाज से पेश आते हैं । जैसे, कुँवर साहब स्वयं को ही श्रेष्ठ मानते थे

लेकिन रावसाहब के यहाँ आकर बिल्कुल मुम की तरह कोमल हो गए । यहाँ तक की रावसाहब को हाँ-जी-हाँ-जी करने लगे । अत: समाज में ऐसे लोगों की भी की नहीं है कि अपने से ज्यादा ताकदवाले के विरोधी कोई काम ना करें । अगर ऐसे लोगों के अनुकूल हम काम करते रहे तो उसमें अपना भी फायदा ही होता है और यही बात लेखक ने कुँवर साहब के द्वारा प्रस्तुत की है । बातों के दौरान रावसाबत कुँवर साहब से कहते है, ''जयंती, तुम्हारे जैसे विद्वान को समझना और समझाना दोनों बातें मेरे लिए बड़ी मुश्किल है । देखो, सारी दिक्कत प्रधानमंत्री ही को लेकर है । उनको मजबूत बनाने का मतलब है, उनके चाहतों को मजबूत बनाना और उन चाहतों को तुम बखूबी जानते हो । सच्चाई तो यह है कि जो देश की समस्याओं को, सुलझानेवाले थे, उन प्रधानमंत्री का लिबलिबापन देश की बड़ी समस्या हो रहा है । जिस उम्मीदवार को वे संसद में चाहते हैं वह इसी लिबलिबेपन की उपज है ।''[29] प्रस्तुत विवरण इस बात का सबूद दिलाता है कि अगर साहब के पास पहुँचना हो तो पहले सिपाई को खुश करो । अगर हम सिपाई को खुश करेंगे तो आसानी से बड़े-साहब तक पहुँच जाएँगे ।

कुँवर साहब सुंदरी, सुशीला और निर्मल भाई वापस आने लगे । रास्ते में आते समय एक हवेली दिखती है । रामलोटन से कुँवर साहब को पता चलता है कि यह हवेली दुबे महाराज की है । रामलोटन एक रिक्षाचालक है जो काफी हट्टा-कट्टा आदमी है । दुबे महाराज के बारे में रामलोटन कुँवर साहब को सभी जानकारी दे देता है । अपनी जमीन किस तरह गई यह बात भी और अपने परिवार के बारे में भी रामलोटन कुँवर साहब को बता देता है । रामलोटन 'कागज' से क्यूँ डरता है इसका स्पष्टीकरण मंत्री जो करते हैं । रामलोटन जैसे कई अनेक किसानों की जमीन दुबे महाराज ने अपने कब्जे में ले ली थी । धमकाकर अँगूठा वगैरा लेकर दुबे ने किसानों की जमीन पर कब्जा किया था । यही कारण था कि रामलोटन जैसे छोटे किसान कागज से डरते है ।

KOLHAPUR

उपर्युक्त बातों से यही स्पष्ट होता है कि आज भी समाज में ऐसे कितने साहुकार और जमीनदार हैं जो बिल्कुल दुबे की तरह हैं । तत्कालीन समाज में जो गरीब और छोटे किसान थे उनका हमेशा छल किया जाता था । उन्हें मजबूरन अपनी ही खेती पर मजदूरी के तौरपर काम करना पड़ता था । अगर काम न करें तो साहुकारों के कोड़ों से सामना करना पड़ता था । यही स्थिति आज भी दिखाई देती है । एक ओर अमीर-अमीर ही बनता जा रहा है और दूसरी ओर गरीब-गरीब ही बनता जा रहा है और यही कारण है कि हमारे देश की उन्नति नहीं हो पा रही है । सबूद लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में दिया है । इसका सबूद साहब से कह देता, ''आदमी से मैं नहीं डरता मालिक न बाघ बघरी से । डर मुझे कागज से लगता है । कागज ने हमारी जमीन कैसे ले ली, मैं नहीं जानता । सारी बात मंत्री जी जानते हैं । वही बताएँगे ।''[30]

बिस्रामपुर के जमीन के तीन खंड हो सकते है । एक वह जिसमें आश्रम, संस्थाएँ वगैरा है । दूसरा वह जिसमें को-ऑपरेटिव फार्म है । तीसरा वह जिसमें करीबन पंद्रह किसानों की जोते थी । इस पर दूबे वंश का स्वामित्व था । कहने लायक कुछ नहीं । बहुतसी जमीन बंजर ही है । अत: दूबे महाराज के बारे में सब जानकारी कुँवर साहब को मिल जाती है । कुँवर साहब दूबे महाराज को मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं ।

कुँवर साहब के व्यक्तित्व के कई गुण हमने देखे अब तक कुँवर साहब किसी के भी साथ प्यार से बर्ताव नहीं करते थे । हमेशा मैं ही सबकुछ हूँ, इस तरह के मिजाज में रहते थे । कुँवर साहब ने रामलोटन की कहानी सुनी तथा रामलोटन जैसे अन्य किसानों की भी हालत देखी और उनके लिए जरासा क्यूँ न हो उनके हृदय में प्रेम पनम गया । दुबे जैसे जमीनदारों ने किसानों की जमीन इस तरह हड़प ली है यह उन्हें अच्छा नहीं लगा । किसानों को जमीन से बेदखल कर दिया है, इसके बारे में एक पत्र कुँवर साहब ने मुख्यमंत्री को लिखा । कुँवर साहब ने लिखे हुए पत्र का उत्तर काफी दिनों के बाद एक रजिस्टर ने दे दिया। कुँवर साहब जानते है कि इस फार्म से

जुड़े हुए किसानों के लिए कुछ कर दिखाना ही मेरे इस नये अवतार की सार्थकता है । कुँवर साहब सुंदरी ने जो टिप्पणीयों बनाई थी उस संग्रह को पढ़ने लगते है ।

प्रस्तुत उपन्यास में परंपरा से ही जमीदार लोग कोटे किसानों को किस तरह छलते आए हैं, उन्हें धमकाते आए हैं यह स्पष्ट किया है । बाप की मृत्यु होने के बाद वही जगह उसका बेटा ले लेता है और वह भी छोटे किसानों को उसी तरह त्रस्त करता है जिस तरह उसका बाप करता था । मंत्री जी कुँवर साहब से बताते है, ''दुबे वंशवाली जमीनदार को-ऑपरेटिव फार्म बना, उसमें अधिकांश भूमि दुबे वंश की थी, किसानों की जोतें थी । उसी साल बुजुर्ग जमींदार दुबे का देहांत हो गया । उनकी जगह इस दुबे महाराज ने ले ली उनका आवारा पियक्कड़ लड़का है ।''[31]

अत: जिनके पास काफी रूपए हैं, संपत्ति है उन्हीं के पास ही सब अधिकार हुआ करते है इस बात पर लेखक ने इशारा किया है । बिस्रामपुर में जो को-ऑपरेटिव फार्म है उसका मैनेजिंग डाइरेक्टर दुबे महाराज है । उसी को-ऑपरेटिव फार्म समिति का अध्यक्ष दुबे का चचेरा भाई है जो पागल से भी बढ़कर है । अत: मन में प्रश्न निर्माण होता है कि जिनकी स्वयं की हालत ही ठीक नहीं वे लोग ऐसी संस्थाओं या फार्म का क्या हाल कर देंगे ? ऐसे लोगों की हाथों में यह संस्थाएँ रखकर विकास की अगर कोई अपेक्षा करें तो वह गलत होगा । इसी तथ्य का उदाहरण लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्ट किया है । ''शुरू से ही फार्म घाटे पर चला । इसके सदस्यों, यानी पुराने किसानों की हालत, खेतिहर मजदूरों की हो गई ।''[32] लेखक प्रस्तुत उपन्यास में समाज में दुबे जैसी प्रवृत्ति के लोगों की वृत्ति पर व्यंग्य किया है । समाज में जो संस्थाएँ वगैरा रहती है उसके सर्वेसर्वा जमींदार, साहुकार ही रहते हैं । अगर यह संस्थाएँ घाटे पर चलने लगी तो कर्ज की अदायगी ये लोग किसानों से ही हासिल करते हैं । आखिर किसानों को ये लोग कुछ कहने-सुनने के लिए बाकी ही नहीं रखते । जैसे, को-ऑपरेटिव फार्म घाटे पर

चलने लगा । कर्ज की अदायगी करना बाकी थी । अब यह कर्ज की अदायगी कैसे ये संस्थावाले बहुत ही सीधा और सरल उपाय ढूँढ़ लेते है कि मजदूरों को मजदूरी से कटौती करना । अगर उससे भी काम नहीं चला तो उनकी जर्मीनों पर कब्जा करना । अत: दुबे ने भी वही किया है । रामलोटन जैसे कोटे किसानों को धमकाकर, उन्हें मारकर, जबरदस्ती से कागज पर लेकर जमीन पर कब्जा कर दिया । यहाँ ग्रामांचलों में स्थित हड़पनीति के दर्शन होते हैं ।

कुँवर जयंती प्रसाद सिंह अब बिस्रामपुर रहकर ही किसानों की मदद करना चाहते हैं । यहाँ तक उनकी जमींन उन्हें दिलवाने के लिए मुख्यमंत्री को मिलने की भी तैयारी करते हैं । रात के समय सुंदरी ने किया हुआ शोध-कार्य उसकी प्रस्तावना और टिप्पणियाँ पड़ रहे थे । सुंदरी के अध्ययन में संयुक्त प्रांत के अलावा प्रसंगवश बिहार के किसानों की दशा का भी संक्षिप्त विवेचन था । बड़े जमींदारों को राजा कहा जाता था । यही जमींदार किसानों पर स्वामित्व का - सा हक रखते थे । जैसे, ‘‘उनकी हैसियत बिचौलिये या दलाल की थी पर जमीन के ऊपर मिल्कियत होने के कारण वे किसानों पर स्वामित्व का -सा हक रखते थे जिसे लचर कानूनों ने व्यवहार में ऐसी मजबूती दे दी थी जिसका जिक्र किसी भी कानून में नहीं था ।’’[33]

कुँवर साहब को टिप्पणियाँ पढ़ते समय अचानक सुंदरी की याद आती है और पूरे आश्रम में सुंदरी की तस्वीर कहीं भी देखने को नहीं मिलती इस बात पर उन्होंने खेद व्यक्त करते हैं । कुँवर साहब बिस्रामपुर के आश्रम में हमेशा के लिए रहने के लिए आए थे । कुँवर साहब पहली बार जब प्रार्थना सभा में गए थे तभी उन्होंने कहा था कि यहाँ सुंदरी का फोटो लगवाना चाहिए लेकिन सुंदरी की कहीं तस्वीर ही नहीं मिली ।

कुँवर साहब को तीस साल पहलेवाली याद आती है । यह यादे सुंदरी की होती है । कुँवर साहब सुंदरी को चाहने लगे थे । यहाँ तक की एक दिन उसे अपनी बाहों में जकड़ भी

लेते हैं । सुंदरी का ठंडा प्रतिरोध देखकर वह उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखते हैं । सुंदरी कुछ दिन रहकर हमेशा के लिए बिस्रामपुर चली जाती है ।

कृषि निदेशक और अतिरिक्त कृषि निदेशक आश्रम आकर सहकारी फार्म के भविष्य पर विस्तार से बात करते हैं । इस दरन्यान कुँवर साहब और दुबे महाराज दोनों में अनबन होती है । सहकारी फार्म की हालत काफी खराब हो चुकी है । ''सहकारी फार्म अब एक उजाड़ बंजर है, बीहड में बदल रहा है । इसके कई सदस्य इस्तीफा देकर बाहर चले गए हैं । वे शहर में ईटगारा ढो रहे हैं, रिक्षा चला रहे है ।''[34] अत: स्पष्ट है कि सहकारी फार्म पूरे घाटे में गया है और इस पर ध्यान देने के लिए भी अब कोई तैयार नहीं है ।

भूदान के रूप में मिली खेती काफी बंजर ही है । उस जमीन को खेती लायक बनाने के लिए किसान सरकार से मदद लेना चाहते है । इस प्रस्ताव की बात समिति के सदस्यों के सामने कुँवर साहब ही करते हैं । इस दरम्यान कुँवर साहब और दुबे महाराज के बीच काफी झगड़ा होता है । रामलोटन दुबे को मारना चाहता है लेकिन कुँवर साहब ही रोक लेते हैं । दुबे के खिलाफ रिपोर्ट लिखवाने की बात होती है और मंत्री जी कुँवर साहब से पूछते है, ''मुझे कल शाम ही पूछना चाहिए था । दुबे महाराज के बारे में क्या पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी जाए ।''[35] कुँवर साहब मात्र रिपोर्ट लिखवाने के लिए विरोध करते हैं । प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट होता है कि कुँवर साहब इतने चालाक है कि स्वयं इस झंझट में पड़ना नहीं चाहते और इसलिए शायद इस घटना को भूल भी जाते हैं । स्वयं को महान सिद्‌ध करने के लिए कहते हैं, ''अगर आश्रम की ओर से आज तक हमने थाना-पुलिस की मदद नहीं ली, तो अब भी नहीं लेंगे । चिंता न कीजिए, इसे मैं खुद देख लूँगा ।''[36] ऐसे चतुर आदमियों की आज के समाज में कमी नहीं है । इस बात की ओर लेखक ने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है ।

रिपोर्ट लिखने से पहले ही खबर आती है कि पुलिस ने दुबे को गिरफ्तार कर लिया है । इस बात पर कुँवर साहब कहते हैं, ''यहाँ हम गांधीवादी संस्था चला रहे है; हम इस मामले को आगे बढ़ाना नहीं चलते हैं । कुँवर साहब की नाटकीयता पल-पल देखने को मिलती हैं । कुँवर साहब किस तरह गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं इसका विवरण प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है । कुँवर साहब के माध्यम से लेखक ने ऐसे लोगों की ओर इशारा किया है जो कहते एक हैं और करते एक हैं । ऊपर से तो ऐसे आदमी-भले आदमी दिखते हैं, लेकिन अंदर से ऐसे लोग बिल्कुल खोकले होते हैं । औरों के लिए उनके दिल में जगह नहीं होती । जैसे कुँवर साहब किसानों की जमीन साहुकारों ने जमींदारों ने हड़प ली है इस बात को लेकर थोड़े दु:खी महसूस होते हैं । खुद पर किचड़ उचालने वाले दूबे को छोड़ देते हैं और अब सामने बरामदे में रोते हुए बच्चें को वह सह नहीं पाते यहाँ तक कि उसे हटाने के लिए भी कहते है । ऐसे ढोंगी लोग आज समाज में पाँव-पाँव के अंतर में मिलने जाएँगे ।

कुँवर साहब मंत्रीजी और प्रभास भाई इनमें दुबे के बारें में चर्चा होती है । चैन की साँस लेकर प्रभास भाई कहते हैं कि इसबार जो प्रशासक नियुक्त हुआ है वह निष्पक्ष और ईमानदार है । दुबे महाराज उसे प्रभावित नहीं कर पाएँगे । अत: मुझे संतोष हुआ कि आखिर जनमत की विजय हुई । इन बातों से स्पष्ट होता है कि प्रशासक लोग भी बड़े जमींदार, साहुकार इनके अनुसार, उन्हें अनुकूल हो इस तरह से ही काम करते है । कुँवर साहब आराम कर रहे थे । इतने में धीरजसिंह आकर कहता है कि खेतों में मारपीट हो गई है । दुबे महाराज के गैरमौजुदगी में रामलोटन और उसके किसान साथियों ने खेती में हल चलाया । इसी कारण दुबे और इन लोगों में मारपीट हो गई । कुँवर साहब को यह अच्छा नहीं लगता और वे गुस्से से चिल्लाकर कहते है - ''तुम सब पागल हो गए हो । तुम लोग हमारा नाम लेकर फौजदारी कर रहे हो ।

ऐसा हो । ऐसा नहीं हो सकता । मैं खुद तुम्हारे खिलाफ बयान दूँगा और लोगों को जेल भिजवाऊँगा । जाओ मंत्री जी को इसी वक्त यहाँ भेजो, उनसे बात करनी होगी ।''[37]

सन् 1950-51 में साम्यवादियों के नेतृत्व में तेलंगाना में भूस्वामियों के खिलाफ किसानों का आंदोलन चल रहा था । वहाँ आचार्य विनोबा जी भी गए थे । पोचमपल्ली में उन्होंने छोटे किसानों के सुधार के सौ एकड़ भूदान की अवधारणा दी । तुरंत ही एक भूस्वामी ने सौ एकड़ जमीन दान में देने की घोषणा की । अत: इस आंदोलन का उद्‌देश्य था कि जिस तरह धूप और हवा पर सबका अधिकार है उसी तरह भूमि पर भी सबका अधिकार हो । पोचमपल्ली की उस ऐतिहासिक घटना के लगभग बत्तीस साल बाद कुँवर साहब आश्रम की एक कुटी में सोच रहे है, ''इतिहास की यह कैसी विड़ंबना है कि सारा आंदोलन पूरे वृत्त का चक्कर काटकर फिर उसी बिंदू पर आ गया है, जहाँ से तेलंगाना में सशस्त्र क्रांति को शुरूआत हुई थी । जहाँ ग्रामदान के बावजूद बिस्रामपुर के किसान फिर अपनी जीत के लिए हथियार तानकर खड़े हो गए है ।''[38]

कुँवर साहब जब अकेले होते हैं तो उन्हें जयश्री की याद हमेशा सताती है । कुँवर साहब सोचते है कि जीवन के अंतिम दिनों में आकर सुंदरी के जीवन पद्‌धति को अपनाकर अपने पूराने पापों का प्रायश्चित कर रहे थे । उन्हें अपने जुनून पर ग्लानि जरूर होती है । उनके त्याग और साधुता के चर्चे हो जाते है । कुँवर साहब अपने बारे में सोचते है । आपने आपको ही उपहास से देखते हैं ।

अत: जिस आदमी ने पृथ्वी पर जन्म लिया है वह अपने पापों पर थोड़ा बहुत क्यूँ न हो लेकिन सोचता है । उसे अपने पापों का प्रायश्चित जरूर होता है । अत: आदमी गरीब हो या अमीर वह इस घेरे से छुटता नहीं । मन-ही-मन में क्यूँ न हो अपने पापों का प्रायश्चित जरूर करता है । यहीं तथ्य लेखक शुक्ल जी ने कुँवर साहब के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है । कुछ देर तक कुँवर साहब ऐसे ही सोच रहे थे । इतने में सुशीला आकर कुँवर साहब को नमस्कार

करती है । दोनों के बीच खुब सारी बातचीत होती है और कुँवर साहब यह भी कहते है कि मैं यहाँ हमेशा के लिए रहने आया हूँ । बात करते-करते सुशीला कहती है कि मेरा आपसे पत्रव्यवहार नहीं रहा पर विवेक से हमेशा संपर्क रहा है । यह सुनकर कुँवर साहब को मानो धक्कासा लगा । कुँवर साहब और सुंदरी के बीच जो कुछ हुआ था वह सुशीला को पता था । कुँवर साहब साहब को शायद इसलिए धक्का लगा होगा कि ये सारी बातें सुशीला ने विवेक को बतायी होगी । कुँवर साहब ने सुंदरी के साथ जो बर्ताव किया था वह बिल्कुल अच्छा नहीं था । यह तो कुँवर साहब भी जानते थे लेकिन उनकी अतृप्त वासना उन्हें कभी चैन से बैठने नहीं देती थी ।

सुशीला निर्मल भाई की याद दिलाकर कहती है कि हम दोनों ने शादी कर ली । कुँवर साहब को इस बात से आश्चर्य होता है । वे सोचते है, ''ये वही सुशीला और निर्मल भाई हैं जिन्हें उन्होंने 'जीवनदानी' समझा था । अपनी प्रखर सामाजिक चेतना और युवा आदर्शवादी के प्रवाह में उन्होंने बत्तीस साल पहले कुछ मूल्यों के लिए अपना सबकुछ अर्पित कर दिया था और अचानक उनका विवाह ! साधारक गृहस्थी का चक्कर ।''[39] शायद सुशीला और निर्मल भाई दोनों की शादी कुँवर साहब को पसंद नहीं, इसलिए ही उन्होंने ऐसा सोचा होगा । कुँवर साहब सुशीला से पूछते है कि इस वक्त निर्मल भाई कहाँ है । इस पर सुशीला तुरंत ही कहतो है कि तिहाड़ जेल में ।

सुशीला कुँवर साहब साहब को बताती है कि निर्मल भाई भूदान आंदोलन में एक सक्रिय नेता है । कुछ सालों बाद विदेशों में भी भूदान आंदोलन के बारे में चर्चा होने लगी । तब निर्मल को आंदोलन की उपलब्धियों और सिद्धांतों पर व्याख्यान देने के लिए बाहर भेजा जाने लगा । निर्मल भाई काम बखूबी निभा रहें थे, यह इसी से जाहिर है कि उन्हें बाहर से बराबर निमंत्रण मिल रहे थे । लेकिन अब उन्हें किसी भी जरूरत नहीं रही । निर्मल भाई इतने बदल

चुके है कि इतने वर्षों तक जो पोशाक वे सम्मान से अपनाते थे वहीं पोशाक उन्हें अब भिखमंगों की पोशाक लगती है । निर्मल भाई की धारणा ऐसी बन गई है कि, ''सर्वोदय या भूदान आंदोलन की बात करने के लिए यह जरूरी नहीं है कि हम पश्चिम में भिक्षुकों का भेस बनाकर जाएँ ।''[40] अत: निर्मल भाई एक दिन सोने की तस्करी के जुर्म में फँसकर जेल में बंद है । आगे सुशीला यह भी कहती है कि मुझे अब उनसे कोई हमदर्दी नहीं है । अब मैं उनसे बिल्कुल अलग हूँ । कुँवर साहब सुशीला को समझाते हैं और अफसोस प्रकट करते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने सुशीला को एक वास्तववादी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है । स्वयं की गलती किस तरह हो गई है यह वह जानती है । सुशीला कहती है कि निर्मल से शादी करने का निर्णय मेरा था और जिस वक्त मैंने यह निर्णय लिया तब मैं कोई छोटी बच्ची नहीं थी । इसलिए मैं भाग्य को कोसना ठीक नहीं समझती हूँ । अत: लेखक ने सुशीला को एक वास्तववादी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है । नहीं तो बहुत बार ऐसा ही होता है कि जब बुरा होता है तब लोग भाग्य को या किसी और को दोषी ठहराते हैं । लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपनी गलती को कबुल करते है ।

सुशीला बिस्रामपुर में तीन दिन रही । सुशीला कुँवर साहब से पूछती है कि आपने आचार्य जी का गीता-प्रवचन पढ़ा ? कुँवर साहब ना कहते हैं । दोनों में भूदान आंदोलन के बारे में काफी चर्चा होती है, यहाँ तक की मानव समाज के बारे में भी बातें होती है । कुँवर साहब सुशीला से फिर एक बार कहते है कि मैं अब यही रहूँगा और मेरी गलतियों का प्रायश्चित करूँगा । सुंदरी और कुँवर साहब के बीच जो कुछ हुआ था उसकी साक्षीदार केवल सुशीला ही थी । इसलिए सुशीला बिना हिचक कहती है, ''पर इसके लिए सुंदरी का आश्रम ही क्यूँ ? आपको इसकी कोई विडंबना नहीं दिखती ? . . . शायद मुझे यह सब न कहना चाहिए पर . . .''[41] यह सुनकर कुँवर साहब कुछ कहते नहीं । कारण भी साफ था कि वे खुद

शर्मिंदा थे । इसलिए कुँवर साहब आत्मसुधार और प्रायश्चित करने की बात करते हैं । सुशीला एक स्पष्ट वक्ता औरत है, इसलिए वह तुरंत कहती है कि ''क्या एक घर छोड़कर दूसरे घर में रहने लगना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है ?''[42] अत: हम कह सकते है कि सुशीला ने मानो कुँवर साहब की जगह क्या है इस ओर संकेत किया है ।

सुशीला अहमदाबाद वापस आकर गीता-प्रवचन की एक प्रत कुँवर साहब को भेजती है । सुशीला जब गीता-प्रवचन खोलती है तब उसे उसमें एक लिफाफा मिल जाता है, जो चौदह साल पहले सुंदरी ने सुशीला को भेजा था । सुशीला को कुँवर साहब के व्यवहार में एक अवांछित आत्मसंतोष दीख पड़ा था । उसी को छत्र करने के लिए वह इस पत्र का उपयोग करती है । सुशीला ने कुँवर साहब पर आरोप लगाया था कि उन्होंने दूसरों की जिंदगी में कितना उथल-पुथल किया था । वह सोचती है, अब कुँवर साहब आश्रम में बैठकर सोचता होगा कि मैंने पुराने पापों का प्रायश्चित कर लिया है, पर उनकी ज्वाला वहाँ तक फैली हुई है यह भी वह दिखाना चाहती है । उस पत्र में कुँवर साहब और सुंदरी इनके प्रेमसंबंधी बहुत सारी बातें थी । सुंदरी पहले पहल शादी नहीं करना चाहती थी लेकिन विवेक को देखकर, समझकर वह विवेक से शादी करने का निर्णय ले लेती है । यह बात वह सुशीला को बताना चाहती थी । लेकिन उसे पहले ही कुँवर साहब सुंदरी को अपने बाहों में जकड़ लेते हैं और स्वयं उसके साथ शादी करना चाहते है । इस बात पर सुशीला को बहुत गुस्सा आता है । अत: अहमदाबाद वापस आकर सुशीला गीता-प्रवचन के साथ-साथ वह पत्र भी भेजती है । सुशीला जानती है कि विवेक के विवाह की सारी संभावनाएँ कुँवर साहब के हाथों ही नष्ट हुई है ।

सुशीला को कुँवर साहब किस किस्म के आदमी है यह पहले भी मालूम था लेकिन अब वह इतनी उत्तेजित हो चुकी है कि वह कुँवर साहब को मानो नीचा हो दिखाना चाहती है और वह उस वजह से उन्हें अपनी जगह दिखाना चाहती है ।

KOLH

सुशीला के नाम सुंदरी ने जो पत्र लिखा था वह कुँवर साहब को मिल जाता है । उस पत्र को उनके हाथ-पैर सुन्न हो गए । उन्होंने सुंदरी और विवेक की जिंदगी के सहज क्रम को एक झटके से तोड दिया है । इस एहसास ने उन्हें कहीं का भी नहीं रखा । वैसे तो बिस्रामपुर के आश्रम में रहकर कुँवर साहब अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहते थे लेकिन अब तो कुँवर साहब उस अग्नि में ही जलते रहे । अत: मनुष्य कितना भी अमीर-बड़ा क्यों न हो उसे उसके पापों से छुटकारा कभी भी नहीं मिलता ।

आज-कल समाज में ऐसी घटनाएँ बहुत देखने को मिलती कि एकाद नेता हो या जो बड़ा आदमी हो उसने कितने भी बुरे काम किए हो पर एकाद काम अच्छा किया तो लोगों को नजर में वह संत दिखाता है । इसी तथ्य को लेखक ने कुँवर साहब जैसे पात्र के माध्यम से स्पष्ट किया है । कुँवर साहब को कष्ट क्या होते है इसका तो पता ही नहीं था । उन्हें सब-ठीक-ठाक चाहिए । अपने आप को वे सर्वेसर्वा समझते हैं और बिस्रामपुर आकर लोगों की सेवा करने का नाटक करते हैं । आखिर कुँवर साहब को बिस्रामपुर का संत कहा जाता है लेकिन खासतौर पर संत हमें उन्हें कहते हैं जो जरूरत के सिवा पास में कुछ रखते नहीं । लोगों की सेवा के लिए खुद को समर्पित करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में कुँवर साहब का नौकर के बिना कुछ चलता नहीं । वे स्वयं उठकर पानी भी नहीं ले लेते । अत: खेद की बात है कि ऐसे ही लोगों की समाज में वाहवा होती हैं और उन्हीकी ही चलती है ।

जिस दिन सुंदरी का पत्र उन्हें मिलता है उसी दिन अखबार में उनकी तस्वीर और साथ में साक्षात्कार भी छपकर आता है । दो तस्वीरें थी एक में छबलाल नामक वही बच्चा, जिसे रोते हुए देखकर उसे कुँवर साहब ही हटाने को कहते हैं वह छबलाल को कुँवर साहब की उँगली पकड़कर दिखाया गया था, दूसरे में वे शाल ओढ़े हुए पलंग के सिरहाने की टेक लेकर बैठे थे । इस चित्र का शीर्षक था, 'बिस्रामपुर का संत' ।

कितना विरोधाभास लगता है 'छबलाल' की तरफ कुँवर साहब ने कभी प्यार भरी नजर भी नहीं डाली थी और छबलाल की उँगली कुँवर साहब के हाथ में ? साक्षात्कार पढ़कर तो खुद कुँवर साहब को भी विश्वास नहीं होता कि मैं इतना महान हूँ लेकिन यही सत्य है कि कुँवर साहब अब कुँवर जयंतीप्रसाद न रहकर 'बिस्रामपुर के संत' बन गए है । यहाँ भी जयंतीप्रसाद पर व्यंग्य फँसा है ।

सुंदरी का पत्र पढ़कर कुँवर साहब काफी बेचैन थे । कुँवर साहब मौत के बारे में बहुत सोचते हैं । इन्हीं दिनों बिस्रामपुर के पासवाले शहर में सत्तारुढ़ पार्टी के युवकदल का एक शिबिर चल रहा था । इस कार्यक्रम के लिए महासचिव आनेवाले थे । महासचिव कुँवर साहब से मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं लेकिन कुँवर साहब मिलने के मूड़ में नहीं है । गुस्से से कुँवर साहब कहते हैं, क्या उन्होंने मुझे कोई मूर्ति समझ लिया है ? जो मेरे दर्शन करने आ रहे हैं । सुंदरी का पत्र पढ़ने उन्हें कहीं भी चैन नहीं मिल रही है । वे हमेशा मृत्यु के बारे में सोचते हैं और एक दिन ऐसा आता है कि कुँवर साहब नदी में कुदकर अपनी जीवन यात्रा समाप्त करते हैं ।

इतने बड़े आदमी पर एक ही बात ने उन्हें कहाँ पहुँचा दिया यह स्पष्ट होता है । अतः इन्सान अपने ही किए हुए पाप की आग ऐसा जलता है कि उसकी जीवन जीने की इच्छा समाप्त होती है और यही कारण है कि स्वयं ही मौत को अपनाते है । इसका सबूद स्वयं कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह है ।

दुर्घटना के दो घंटे बाद पिता के मौत की खबर विवेक को मिलती है । कुँवर साहब ने विवेक के नाम एक लिफाफा छोड़ा था । विवेक आने के बाद मंत्री जी वह लिफाफा विवेक को दे देते हैं । विवेक पिता की मौत का पता लगवाना चाहता है और इसलिए वह सुशीला से बात करता है । सुशीला कहती है, ''कुछ भी नहीं विवेक, जबसे तुमने मुझे फोन पर

उनके निधन का असली कारण बताया है, मैं खुद सदमें में हूँ । पिछले दिनों में मैं बराबर सोचती रही हूँ, पर मेरी समझ में कुछ नहीं आता ।"[43]

सुशीला की बात सच थी । उसे भारी सदमा पहुँचा था । बिस्रामपुर में रहकर कुँवर साहब सादगी का प्रदर्शन कर रहे हैं । उसे उनके अंदाज में एक नैमिक अहंभाव दिखाई दिया था । सुशीला उसे बर्दाश्त नहीं कर पायी थी । सुशीला को लगता है कि कुँवर साहब ने विवेक और सुंदरी की जिंदगी उजड़ डाली है और यह बात उसे मालूम होनी चाहिए । उस क्रूरता के आवेश में आकर वह कुँवर साहब को वह पत्र भेजती है । सुशीला को लगता है यह आत्महत्या नहीं है तो यह हत्या है और यह मैंने की है । अत: इस अपराध बोध को मुझे अकेली को ही ढोना होगा । अत: वह विवेक को कुछ नहीं बता देती ।

सुशीला का यह मानना सही नहीं था । कुँवर साहब के कारण ही सुंदरी और विवेक की शादी नहीं हो पाती और उसी के कारण विवेक का सारा जीवन ट्रैजेड़ी बन गया है । यह सुशीला की सोच भी गलत साबित होती है क्योंकि स्वयं विवेक ही सुशीला को जीवन की ट्रैजेड़ी बताता है । विवेक सुशीला को बताता है, तुम ट्रैजेड़ी का अर्थ नहीं समझती, इसलिए तुम मेरी ट्रैजेड़ी पर सहानुभूति जता रही हो - ट्रैजेड़ी एक भयावह चीज है । किसी से प्रेम हो और उससे शादी न हो जाए यह कोई ट्रैजेड़ी नहीं है । आज की सामाजिक व्यवस्था में जिंदगी के हजार कष्टों में से यह एक कष्ट है । ट्रैजेड़ी क्या होती है, यह जानना चाहती हो तुम ? - हिटलर ने बड़ी क्रूरता से अनेक यहुदियों पर अत्याचार किए । भारत-पाक बँटवारा के समय भयानक नरसंहार होकर अनेक निरापराध लोगों की जाने गई । कुछ ही साल पहले हुआ बंगाल में अकाल, वियतनाम का युद्ध यह ट्रैजेड़ी है । भूकंप और ज्वालामुखी के उत्पात की तरह इसे ईश्वरी कोप नहीं मानते । इसे तो हमारी ही पशुता ने रचा है । विवेक व्यक्तिगत स्तर की भी ट्रैजेड़ी सुनाता है । आज हम इस वातानुकूलित कमरें में आराम से बातें कर रहे हैं लेकिन इसी

वक्त न जाने कितनों की हत्या हो रही होगी । कितने मासूम बच्चीयों को कोड़े से मार-मारकर उन्हें वेश्या बनाने लिए मजबूर किया जा रहा होगा । कितने बच्चों के हाँथ-पाँव तोड़कर उन्हें अपाहिज बनाकर भीख माँगने के लिए मजबूर किया जा रहा होगा । यही है जीवन की ट्रैजेड़ी ।

1.2.3 कथावस्तु की समीक्षा -

आचार्य विनोबा भावे द्वारा चलाये गए भूदान आंदोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन के साथ-साथ निजी जीवन का उत्थान-पतन भी सिमट आया है ।

कथावस्तु में 'बिस्रामपुर का संत' नामक गाँव केंद्र में माना है । उपन्यास में कुँवर साहब जयंतीप्रसाद सिंह प्रमुख पात्र हैं । कथावस्तु आरंभ से अंत तक उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती है । कुँवर साहब महत्त्वाकांक्षी, कुंठा से ग्रस्त, लोभी, आत्मछल और अतृप्त इन विशेषताओं के साथ पाठकों के सामने प्रकट होते हैं ।

कुँवर साहब जयंतीप्रसाद सिंह राज्य के राज्यपाल हैं । अत: लेखक शुक्ल जी ने राजनीतिक नेताओं की प्रवृत्तियों को कुँवर साहब के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । जैसे कुँवर साहब से मिलने के लिए मुख्यमंत्री आते हैं लेकिन उन्हें जरा भी महत्त्व न देकर स्वयं की ओर ही ज्यादा महत्त्व या ध्यान देते हैं । उनके दृष्टिकोण के अनुसार स्वयं के सिवा कोई महत्त्वपूर्ण नहीं । कुँवर साहब आरंभ से अंत तक किसी के भी साथ प्यार से बर्ताव नहीं करते । कुँवर साहब बिल्कुल कुंठा से ग्रस्त हैं और स्वयं के सिवा किसी की फिक्र नहीं करते । इन बातों के आधार पर लेखक ने राजनीतिक नेताओं पर व्यंग्य किया है ।

आज हम जिन लोगों को चुनकर मंत्रीमंडल में भेजते है वह लोगों हमारे समाज के ही होते हैं । ये लोग समाजसेवा करने का, देश सेवा करने का सिर्फ नाटक करते हैं और यही तथ्य कुँवर साहब के माध्यम से स्पष्ट होता है । अत: यह कथ्य इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि

यह सिर्फ राजनीतिक नेताओं की प्रवृत्ति को या गाथा को प्रस्तुत करता है बल्कि इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि रामलोटन जैसे खेतिहर शोषितों के प्रति संघर्ष करते है । दुबे की गैर मौजुदगी में खेती में हल जोतने का साहस करते हैं ।

कथा की इस विशिष्ट प्रकृति ने पात्रों को दो विचारों में बाँट दिया है जिन्हें उनके क्रियाकलापों द्वारा भलि-भाँति पहचाना जा सकता है । ये दो विचारधाराएँ हैं गांधीवाद और मार्क्सवाद । कुँवर साहब गांधीवादी, रावसाहब जैसे लोग गांधीवादी विचारधाराओं को अपनाते हैं तो विवेक, सुशीला जैसे पात्र मार्क्सवाद को अपनाते हैं । दो विचारधाराओं के साथ लेखक ने शोषक और शोषितों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है । दुबे जैसे लोग परंपरा से किसानों का शोषण करते आ रहे हैं । रामलोटन जैसे कितने सारे किसान ऐसे लोगों का अन्याय-अत्याचार सहते आए हैं ।

भूदान आंदोलन आचार्य विनोबा भावे ने किसी को पछाड़ने के लिए किया था या यह अहम् मुद्दा नहीं हैं, बल्कि इस भूदान से मिली भूमि क्या सचमुच भूमिहीन किसानों को मिली ? दुःख की बात यह है कि इस आंदोलन में गवर्नर स्तर तक के लोग भी अपने-अपने फायदों को लेकर शामिल हुए । जिन तथ्यों को उपन्यास में स्पष्ट और समीक्षात्मक शैली में उभारा गया है उनके पुनर्विश्लेषण की आवश्यकता नहीं रह जाती । भूदान आंदोलन के नाम पर लोग अपनी जेबे किस तरह भर रहे थे उसका स्पष्ट चित्रण उपन्यास में किया गया है । यथार्थ का यही पक्ष है, सभी योजनाओं का जो आम आदमी के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बनाई गई है, यह योजनाएँ असफलता का मुँह देखती रही ।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह भी इस आंदोलन से जुड़े हुए हैं । बीच में कुँवर साहब अपने में परिवर्तन भी महसूस करते हैं । इसी कारण उनकी आस्था आंदोलन में और गहरी हो जाती है ।

इस उपन्यास में सुंदरी और विवेक जैसे पात्र सामाजिक परिवर्तन के आधारस्तंभ हैं । यह ठीक है लेकिन ऐसे पात्र संख्या में कम है । उन्हें सफलता पाना भी कठिन बन जाता है । भूदान आंदोलन की वैश्विक प्रतिष्ठा बढ़ने पर निर्मल भाई को विदेशों में भी बुलावा आने लगा । जेबे डालरों से भरनी लगी और निर्मल भाई विलासिता के आगोश में अनचाहे खींचने लगे । इस रात ध्यान दे तो यहीं पर मानव जीवन की वृत्तियाँ नजर आती है । अत: भूदान आंदोलन में सहयोग देनेवाले निर्मल भाई एक दिन सोने की तस्करी के आरोप में जेल में बंद हो जाते हैं ।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह अपने को बदलने का अथक प्रयास करते हैं । उनका मानना है कि यदि अच्छाई का हमेशा अभिनय भी किया जाए तो एक दिन अभिनय खत्म हो जाता है और अच्छाई ही जाती है ।

प्रस्तुत उपन्यास में कुँवर साहब को छोड़कर अन्य पात्रों का विकास नहीं हुआ है, फिर भी प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी कहानी को लेकर पाठकों के सामने प्रकट होते हैं ।

श्रीलाल शुक्ल जी कहते हैं निर्मल भाई सोने की तस्करी के सिलसिले में तिहाड़ जेल में बंद हैं । पर शुक्ल जी यह नहीं बतलाते कि एक जमाने के रूमानी, आदर्शवादी निर्मल भाई गुनहगार की दुनिया में पहुँच गए है ।

भूदान यज्ञ में मिली जमीन के वितरण तथा उसके पुनर्गठन के लिए बनी समितियों में गांधीवादी और मार्क्सवादी तत्वों के बीच रस्साकशी और गुटबंदी चली । फलस्वरूप जो समितियाँ थी वह अपने उद्देश्य में विफल रही । अत: महत्वपूर्ण बात यह भी है कि भूदान आंदोलन में जो भूमि मिली वह जमीन बंजर ही है । जिन्हें जमीन दी गयी थी वे लोग उस पर खेती नहीं कर पाए क्योंकि उनकी जोते लाभप्रद नहीं बन पायी । साथ ही खाद, बीज, सिंचाई बैल तथा पथ प्रदर्शन का पूर्णतया अभाव ही रहा है । जहाँ सरकारी खेती प्रारंभ की गई

वहाँ उसके आयोजन से जुड़ी समस्याओं को गंभीरता से सुलझा नहीं गया । सहकारी खेती की योजना का इस्तेमाल धनी किसानों और भूस्वामियों ने अपने ही हित के लिए किया ।

भूदान आंदोलन की विफलता के कारणों में उसका रूमानीपन महत्वपूर्ण था । वस्तुगत आधार कमजोर था ।

मनुष्य नीतिभ्रष्ट किस-तरह हो रहा है यह लेखक शुक्ल जी ने कुँवर साहब के दूवारा पाठकों के सामने प्रकट किया है । कुँवर साहब बी. ए. में थे तब उन्होंने जयश्री, एक शाादी शुदा औरत से प्यार का किया । उसी प्यार को वे जिंदगी के हर-मोड़ पर याद करते रहे । वही प्यार कुँवर साहब सुंदरी में देखने लगे । एकाद क्षण भी उन्होंने पत्नि को याद नहीं किया । जो सुंदरी उन्हें बेटी योग्य या बहु योग्य थी उसी के साथ वे शादी करना चाहते है । इससे स्पष्ट होता है कि नैतिकता का ऱ्हास किस तरह हो रहा है ।

अखबार वालों ने तो उनका साक्षात्कार और बच्चें के साथ कुँवर साहब की तस्वीर छपवाकर उन्हें 'संत' की उपाधि दे दी । बच्चे के साथ कुँवर साहब की तस्वीर ? कितना विरोधाभास है यह ? वास्तव में उन्होंने उस बच्चे को कभी प्यार से देखा तक नहीं था ।

गवर्नर साहब पुत्र की प्रयेसी के साथ शादी करना चाहते है और सच्चाई जानने के बाद 83 वर्ष की उपलब्धियों पर चिंतन करते हुए अपनी इच्छा से मृत्यु को अपनाना चाहते हैं । उपन्यास के अंत में विवेक दूवारा जो जीवन की त्रासदी बताई है वह सही मायने में जीवन का वास्तववादी चित्रण लगता है । एकाद अपवाद छोड़कर आज अन्याय, अत्याचार, गुंडागर्दी का वातावरण ही ज्यादातर प्रचलित है । मनुष्य मानो पाखंडी बनता जा रहा है । ऊपर से देखे तो सबकुछ अच्छा ही अच्छा लगता है लेकिन अंदर से मात्र आदमी बिल्कुल खोकला बनता जा रहा है । नैतिकता, शिष्टाचार की कोई कदर नहीं रही है । 'मैं' ही सर्वश्रेष्ठ हूँ इस धारा में मानव बहता चला जा रहा है ।

14142
A

उपर्युक्त तथ्यों को देखने के बाद ऐसा प्रतित होता है कि श्रीलाल शुक्ल जी का प्रस्तुत उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' भूदान यज्ञ के यथार्थ से दूर लगता है लेकिन उसके इर्द-गिर्द घूमता जरूर प्रतित होता है ।

समन्वित निष्कर्ष -

श्रीलाल शुक्ल द्वारा लिखित प्रस्तुत उपन्यास भूदान आंदोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है । इस कथा के विषय को सामाजिक क्षेत्र से चुनकर लेखक ने सामाजिक सांप्रदायिक एवं संकीर्ण मनावृत्तियों पर कड़ा प्रहार किया है । लेखक ने कुँवर साहब के माध्यम से राजनीतिक नेताओं की पोल खोलकर उनकी प्रवृत्तियों की पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । लेखक ने इस तथ्य को भी स्पष्ट करना चाहा है कि समाज में जो संस्थाएँ वगैरा होती है उन्हें जो अनुदान मिलता है, उस अनुदान का उपयोग नेता लोग अपने स्वार्थ के लिए किस तरह करते हैं यह स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी का संघर्ष किस तरह निर्माण होता है यह दिखाई देता है । कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह औरत को 'एक औरत' इस दृष्टिकोण से ही देखते हैं । कुँवर साहब भोगवादी वृत्ति की तरफ झुकते हुए दिखाई देते हैं तो इसके बिल्कुल विपरित विवेक है, जो औरत को एक जीवन के रूप में देखता है । विवेक एक यथार्थवादी पात्र है, जो जीवन की वास्तविकता जानता है । जीवन को वह खुली आँखों से देखता है और इसलिए ही सुंदरी के मौत के कष्ट को भी सह लेता है । सच्चा प्रेम वही संभव है, जहाँ वह आत्मतृष्टि की भूमि पर स्थित हो ।

पुरुष प्रधान समाज में नारी के जीवन में पुरुष का आश्रय स्वीकारना ही पड़ता है, चाहे वह समाज को सामने रखकर या उससे छिपकर हो । जैसे, सुंदरी ने समाज सेवा के लिए

अपना परिवार तक छोड़ दिया था लेकिन वह अपना निर्णय बदलती है और विवेक से शादी करना पसंद करती है ।

इस उपन्यास की कथावस्तु के केंद्र में कुँवर जयंतीप्रसाद हैं, सारी गौण कथाएँ एवं बाकी सारे पात्र उन्हीं को केंद्र में रखकर उपन्यास की कथावस्तु में समाविष्ठ हुए हैं । कुँवर जयंतीप्रसाद के माध्यम से राजनीतिक नेताओं पर व्यंग्य किया गया है । भूदान आंदोलन के पीछे की जमींदारों की उदारता की खिल्ली उड़ाई है । भूदान आंदोलन की सफलता-असफलता पर भी श्रीलाल शुक्ल ने गहराई से कहाँ चिंतन किया है । भूदान के आड़ में तत्कालीन युग के जमींदारों ने अपना उल्लू सीधा कैसे किया, आश्रम व्यवस्था और सहकारी संस्थाओं को बढ़ावा कैसे दिया इसे भी यहाँ स्पष्ट कर दिया है । जयंतीप्रसाद को 'बिस्रामपुर का संत' कहकर आधुनिक राजनीतिक संतों की खिल्ली उड़ाने का प्रभावी काम किया है । इस उपन्यास में राजनीतिक नेताओं के प्रश्रय में पले भ्रष्टाचार को निर्मल के माध्यम से प्रस्तुत किया है । निर्मल की पत्नी सुशीला इस उपन्यास की कथावस्तु का एक ऐसा पात्र है जो भ्रष्टाचार का विरोध ही नहीं करता बल्कि भ्रष्टाचारी पति को त्यागने का प्रशंसनीय काम भी करती है । जयंतीप्रसाद के माध्यम से राजनीति में पनपनेवाली अनीति पर भी प्रकाश डाला गया है ।

प्रस्तुत उपन्यास का नामकरण व्यंग्यात्मक लगता है । कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के जीवन-वर्णन से इस कथा को आकर्षण बनाकर राजनीतिक नेताओं की प्रवृत्तियों पर जमीनदारों की वृत्तियों पर कड़ा प्रहार किया है ।

अत: सामंतवादी-पूँजीवादी संस्कारों और व्यवस्था के बीच-छुटते हुए समाज की विसंगतियों और दुरावस्थाओं को समाज के सामने प्रक्षेपित करना और समाज को इन बातों से जागृत करना ही प्रस्तुत उपन्यास की कथा का प्रमुख लक्ष्य लगता है ।

संदर्भ-सूची

अ.नं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	पृष्ठ क्रमांक
1.	डॉ. महफतलाल पटेल,	हिंदी के वैज्ञानिक उपन्यास	पृ. 08
2.	डॉ. मैथिलीप्रसाद भारद्वाज,	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत	पृ. 379
3.	डॉ. भगीरथ मिश्र,	काव्यशास्त्र	पृ. 77
4.	डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर,	उपन्यास स्थिति और गति	पृ. 08
5.	वही,	वही	पृ. 08
6.	श्रीलाल शुक्ल,	बिस्रामपुर का संत	पृ. 09
7.	वही,	वही,	पृ. 12
8.	वही,	वही,	पृ. 13
9.	वही,	वही,	पृ. 18
10.	विनोबा भावे	भूदान गंगा (प्रथम खंड)	पृ. 07
11.	वही,	वही,	पृ. 22
12.	वही,	वही,	पृ. 22
13.	वही,	वही,	पृ. 23
14.	वही,	वही,	पृ. 24
15.	वही,	वही,	पृ. 24
16.	वही,	वही,	पृ. 25
17.	वही,	वही,	पृ. 35
18.	वही,	वही,	पृ. 44
19.	वही,	वही,	पृ. 45
20.	वही,	वही,	पृ. 68
21.	वही,	वही,	पृ. 68

अ.नं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	पृष्ठ क्रमांक
22.	श्रीलाल शुक्ल,	'बिस्रामपुर का संत'	पृ. 70
23.	वही,	वही,	पृ. 79
24.	वही,	वही,	पृ. 79
25.	वही,	वही,	पृ. 79
26.	वही,	वही,	पृ. 93
27.	वही,	वही,	पृ. 95
28.	वही,	वही,	पृ. 101
29.	वही,	वही,	पृ. 102
30.	वही,	वही,	पृ. 114
31.	वही,	वही,	पृ. 123
32.	वही,	वही,	पृ. 123
33.	वही,	वही,	पृ. 131
34.	वही,	वही,	पृ. 136
35.	वही,	वही,	पृ. 138
36.	वही,	वही,	पृ. 140
37.	वही,	वही,	पृ. 151
38.	वही,	वही,	पृ. 152
39.	वही,	वही,	पृ. 159
40.	वही,	वही,	पृ. 160
41.	वही,	वही,	पृ. 165
42.	वही,	वही,	पृ. 165
43.	वही,	वही,	पृ. 203